

# चिन्तन-सृजन

त्रैमासिक

वर्ष 3 अंक 3

जनवरी-मार्च 2006

सम्पादकीय परामर्शदात्री समिति

डॉ. लोकेशचन्द्र

यशदेव शल्य

जे.एन.राय

सम्पादक

बी. बी. कुमार

आस्था भारती

दिल्ली

## विषय-क्रम

### वार्षिक मूल्य :

व्यक्तियों के लिए	60.00 रुपये
संस्थाओं और पुस्तकालयों के लिए	150.00 रुपये
विदेशों में	\$ 15

### एक प्रति का मूल्य

व्यक्तियों के लिए	20.00 रुपये
संस्थाओं के लिए	40.00 रुपये
विदेशों में	\$ 4

### विज्ञापन दरें :

बाहरी कवर	10,000.00 रुपये
अन्दर कवर	7,500.00 रुपये
अन्दर पूरा पृष्ठ	5,000.00 रुपये
अन्दर का आधा पृष्ठ	3000.00 रुपये

### आस्था भारती

12/604 ईस्ट एंड अपार्टमेंट

मयूर विहार फेस-1 विस्तार

दिल्ली-110096

से आस्था भारती के लिए डॉ. बी.बी. कुमार, सचिव द्वारा प्रकाशित तथा विकास कम्प्यूटर एण्ड प्रिण्टर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32 द्वारा मुद्रित।

फोन : 011-22712454

अणु डाक : asthab@vsnl.net

वेब साइट : asthabharati.org

चिन्तन-सृजन में प्रकाशित सामग्री में दृष्टि, विचार और अभिमत लेखकों के हैं। सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है।

सम्पादकीय परिप्रेक्ष्य	5
1. विचारधारा की मौत! <i>हरिवंश</i>	8
2. मानसिक पराधीनता <i>प्रेमचन्द्र</i>	24
3. चक्कियों का राष्ट्रीयकरण <i>शंकर पुणतांबेकर</i>	30
4. विकास के निमित्त विज्ञान <i>डॉ. राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव</i>	33
5. हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों की उपलब्धियाँ <i>नरेन्द्र कोहली</i>	39
6. गुणाढ्य की बृहत्कथा : इतिहास और लोक-वाङ्मय <i>डॉ. राजमल बोरा</i>	48
7. रामायण और महाभारत में पर्यावरण : अवधारणा और स्थिति <i>डॉ. मदनमोहन तरुण</i>	76
8. मुहम्मद के कार्टून : कुछ असुविधाजनक प्रश्न <i>डॉ. शंकर शरण</i>	89
9. गोंड जनजाति के वीर योद्धा कोमुरम भीम <i>डॉ. विजयराघव रेड्डी</i>	96

10. भाषा की राजनीति और सर सैयद अहमद खॉ की भूमिका कृपाशंकर सिंह	107
11. मुण्डा जनजाति और उनकी भाषा अभिषेक अवतंस	113
पाठकीय प्रतिक्रिया	122

## सम्पादकीय परिप्रेक्ष्य

### भारतीय राजनीति की विडम्बना

भारतीय राजनीति में नैतिक क्षरण एवं विखराव की प्रक्रिया कोई नयी बात नहीं है। पिछली शताब्दी के तीसरे दशकके मध्य जब 'गव्हमेण्ट आफ इण्डिया एक्ट' लाया जा रहा था, अंग्रेजी सरकार भारतीयों को सत्तामें सहभागी बनाने जा रही थी, तब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की सदस्य संख्या अचानक दसगुणा से अधिक बढ़कर पचास लाख की संख्या पार कर गयी। कांग्रेस का चरित्र बदला, उसमें राष्ट्रसेवियों का वर्चस्व कम हुआ, सत्ता-लोभियों का वर्चस्व बढ़ा। व्यक्ति-केन्द्रित राजनीति के दाव-पेंच पिछले दरवाजे से घुसे। किन्तु गांधी का प्रभाव बना रहा, नैतिक क्षरण की गति अत्यन्त धीमी रही।

भारतीय राजनीति के विखराव की प्रक्रिया स्वतंत्रता के बाद ही प्रारंभ हो गयी थी। दलों का आन्तरिक अनुशासन शिथिल पड़ना भी स्वाभाविक ही था। आजादी के बाद ही कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के समाजवादी कांग्रेस से अलग हुए। समाजवादी पार्टी कई बार टूटी और जुड़ी। यही बात कांग्रेस के साथ भी हुई। साम्यवादियों तथा अन्य पार्टियोंजैसे अकाली दल, रिपब्लिकन पार्टी, आदिकी कहानी भी अलग नहीं है।

ऐसा राजनीतिक दलों/नेताओं में जनतांत्रिक मूल्यों के ह्रास तथा व्यक्तिवादी स्वार्थपरक प्रवृत्ति की वृद्धि के परिणाम स्वरूप हुआ। जनतंत्र में सिद्धान्ततः उनचास व्यक्तियों को इक्यावन की बात माननी चाहिए। लेकिन आज तो अकेला व्यक्ति भी, यदि दल में रहकर उसका व्यक्तिगत या पारिवारिक स्वार्थ नहीं सधता, तो वह दल से अलग होकर नया दल बना लेता है। फिर दलों की अगुवाई करनेवाले लोग भी जनतांत्रिक तरीके से दल नहीं चलाते। उनमें गणतांत्रिक मूल्यों का घोर अभाव है। विभिन्न दलों में आन्तरिकलोकतंत्र का अभाव एक कटु सत्य है। चोटी के नेता भी चापलूसी पसन्द करते हैं। कई बार उनके वरीय साथी भी उनसे सही बात कहने से कतराते हैं। नेता का आतंक उसे जन और जमीन से काटता है। राजनीतिक दलों में मनोनयन की राजनीति द्वारा, बहुधा गलत ढंग से, दल पर वर्चस्व बनाए रखा जाता है। आवश्यकता है कि दलों के भीतर जनतांत्रिक मूल्य पुनर्स्थापित किए जाएँ, सभी दलों को जनतांत्रिक तरीके से चलाया जाय।

बहुत दिनों तक भारतीय जनता पार्टी तथा भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सिस्ट) के आन्तरिक अनुशासन का मिथक बना रहा। किन्तु आज वह मिथक टूट चुका है। आज भारत का कोई भी राजनीतिक दल ऐसा नहीं है, जो आन्तरिक अनुशासनहीनता

का शिकार न हो। यह भारतीय राजनीति में बिखराव के सबसे बड़े कारणों में से एक है। वस्तुतः उनमें यह अनुशासनहीनता मूल्यों के क्षरण के कारण ही आयी है।

स्वतंत्रता के बाद समाजवादी एवं साम्यवादी ही नहीं, नेहरू तथा उनका दलभारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस-समाजवाद का बिगुल बजाता रहा। इससे बढ़कर बिडम्बना की बात क्या हो सकती है कि उनके समाजवादी नारों के बावजूद 1947 के बाद भारत में समाज की केन्द्रीयता लगातार घटी, राज्य-सत्ता की केन्द्रीयता उसी अनुपात में बढ़ती गयी। सामाजिक नियंत्रण के उद्घोषकों में इतनी तमीज कभी नहीं आयी कि वे सामाजिक नियंत्रण तथा नौकरशाही के नियंत्रण में भेद कर सकें। उनका समाजवाद वस्तुतः नौकरशाहवाद ही था। इस व्यवस्था में नौकरशाहों पर दबाव देकर या उनकी सहमति से राजनीति-कर्मी/नेता अपना स्वर्थ सिद्ध करते रहे। देश को उनलोगों ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि का चारागाह बना डाला। भ्रष्टाचार, कालाबाजारी बढ़ी; व्यवस्था ध्वस्त हुई। मुनाफाखोरों तथा बाद में अपराधियों के, इस अन्तर्संबंध, इस साँठगाँठ, में सम्मिलित होने से स्थिति बिगड़ती चली गयी।

बंगला में एक कहावत है: “चण्डीपाठ से जूता-सिलाई तक”। यही स्थिति आजादी के बाद के सरकारों की रही। उन्हें बिस्कुट बनाने, होटल चलाने, जूता बनाने, इस्पात, खाद, आदि बनाने; बस, जहाज, रेल चलाने; प्रशासन चलाने, न्याय-व्यवस्था ठीक करने, देश की रक्षा करने, आदि सब का भार दिया गया। ऐसी उम्मीद जतायी गयी कि सरकार ‘रोजी, कपड़ा, मकान, दवा-दारु, शिक्षा’ सबकी व्यवस्था करेगी। स्पष्टतः ऐसी अव्यावहारिक सोच अंग्रेजी पढ़े-लिखे नेताओं की विदेशों से आयातित सोच थी। उन्हें जमीनी सच्चाई का पता न था। व्यवस्था चल न पायी। आज सरकारें न्याय-व्यवस्था के अपने मौलिक उत्तरदायित्व के निर्वाह में भी अक्षम हो गयी हैं।

भारतीय राजनीति से विचारधारा के लोप के फलस्वरूप राजनीतिक नेताओं के स्वार्थ सर्वोपरि हो गये। देश/समाज-केन्द्रित राजनीति के स्थान पर व्यक्ति-केन्द्रित राजनीति का प्राबल्य, सभी दलों के समानउद्देश्य (येन केन प्रकारेण सत्ता-प्राप्ति) तथा कार्य-पद्धति की समरूपता, उनके बीच की सैद्धान्तिक/वैचारिकविभाजकता के लोप आदि से दलोंकी अलग पहचान मिटी। दल/व्यक्ति/परिवार-केन्द्रित राजनीति के चलते ही विभिन्न दल राष्ट्र या समाज की आवश्यकता को ध्यान में नहीं रख पाये।

आज हमारे सामाजिक/राष्ट्रीय जीवन का कोई ऐसा पक्ष नहीं है जो राजनीति से प्रभावित न हो। सबसे दुखद बात तो यह है कि आज देश की ऐसी कोई भी समस्या नहीं है, जिसकी जड़ें भारतीय राजनीति में नहीं खोजी जा सकती। हमारी समस्त समस्याओं के सूत्र -- चाहे समस्या भ्रष्टाचार की हो, नक्सलवाद की हो, पूर्वोत्तर या जम्मू-कश्मीर की हो -- कहीं न कहीं हमारी गलत राजनीति से जुड़े हैं। बुरी बात तो यह हुई है कि इस राजनीति ने दलगत स्वार्थों की पूर्ति तथा सत्ता पर काबिज होने या बने रहने के लिए समाजको बाँटा; मजहबी कट्टरता एवं जातिवादी विभाजन

को बढ़ावा दिया; धर्म तथा जाति आधारित व्होट-बैंक कायम किए। शिक्षण/अनुसंधान संस्थाओं में उनकी घुसपैठ से बौद्धिक वातावरण दुषित हुआ; बौद्धिक उलझाव एवं जड़ता बढ़ी; हम अपनी सांस्कृतिक जड़ों से कटे, हमारी समरसता भंग हुई; हमारी दृष्टि विखंडित हुई।

भारतीय राजनीति की संवेदनहीनता, उसका जमीन से कटा होना, उसके सबसे दुखद पक्षों में एक है। जब कोई हादसा होता है; सैकड़ों निरीह मर्द, औरत तथा बच्चे मरते हैं, तब भी यदि राष्ट्रीय स्तर के नेताउनक लाशों पर राजनीति करने का लोभ संवरण नहीं कर पाते, जैसा कि गया के पास राजधानी एक्सप्रेस के नक्सलवादियों द्वारा कराये गये हादसे के समय हुआ था, तो स्थिति निश्चय ही भयावह लगती है। जब राष्ट्रीय राजनीतिक दल अवैध घुसपैठियों का बचाव करें, उन्हें मतदाता बनाकर हमारी राष्ट्रीय प्रभुसत्ता को कमजोर करें; हमारी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए खतरा पैदा करने में सहायक हों, तो हमें डरना और सचेत होना ही चाहिए। वैसे खतरा तो राष्ट्रीय स्तर की राजनीति के विखण्डन, राष्ट्रीय दलों के टूटने तथा कमजोर होने से भी उत्पन्न हो रहा है। विखण्डित राजनीति सचमुच ही देश के लिए खतरनाक हो रही है। आज राजनीतिक दलों से कर्मठ, ईमानदार प्रतिबद्ध लोगों का जुड़ाव; तथा दलाल किस्म के, धौंस, पैसे तथा अपराधके बल पर स्थापित भीड़ का विस्थापन आवश्यक है। इससे राजनीतिक दल जनता का विश्वास पा सकेंगे। यह भी आवश्यक है कि राजनीतिक नेता विचार के नेता (थाॉट लीडर) भी बनें। वे विचार-संयमित कार्यक्रमों एवं नीतियों की राजनीति चलाएँ। लेकिन आज ये सब बातें आसान भी नहीं हैं। आज देश-हित मेंराष्ट्रीय स्तर के शासक एवं विरोधी दलों का सबल होना परमावश्यक है। इसके लिए हमारी राजनीतिक संस्कृति में सार्थक बदलाव आना चाहिए। इस बदलाव के लिए नागरिक पहल भी आवश्यक है। नागरिक समाज को जनजागरण का अभियान चलाकर लोकतांत्रिक तरीके से राजनीतिक दलों को इसके लिए प्रेरित या (आवश्यकता पड़ने पर) वाध्य करना चाहिए। ऐसा लोकतांत्रिक तरीके से शान्तिपूर्वक अपने मतों के सार्थक प्रयोग द्वारा किया जाना कठिन नहीं।

**ब्रज बिहारी कुमार**

## विचारधारा की मौत!

### हरिवंश\*

[क्या पत्रकारिता समाज को बदल सकती है? खासतौर से पत्रकार और मीडिया से जुड़े अधिसंख्य लोग मानते हैं कि पत्रकारिता, नए समाज, नए विचारों या बड़े बदलाव का सूत्रधार हो सकती है। पर यह सच नहीं है, पत्रकारिता की सर्वश्रेष्ठ भूमिका 'वाचडॉग' की हो सकती है। अन्ततः राजनीतिक विचार ही बड़े बदलाव की धुरी हैं। विचारहीन राजनीति या विचारशून्य समाज में पत्रकारिता की प्रेरक शक्ति है, बाजार। इसी बहस के इर्द-गिर्द प्रस्तुत है यह आलेख।]

पत्रकारिता से जुड़े प्रायः हर सेमिनार, गोष्ठी या बातचीत के अन्त में, यह सवाल उठ जाता है कि पत्रकारिता इतनी अप्रभावी-असहाय क्यों हो गई है? राजसत्ता अपना बुनियादी काम-फर्ज छोड़ दे, भ्रष्टाचार हर स्तर पर दिखाई दे, गवर्नेन्स खत्म हो जाए, विधायिका अपनी बुनियादी भूमिका छोड़ दे, न्यायापालिका में दो-दो करोड़ मुकदमे लम्बित हों और विलम्ब से न्याय ही नियति हो, कार्यपालिका, व्यवस्था पर बोझ बन गई हो, तब पत्रकारिता पेज तीन के विषय क्यों मुख्य मानती है? अगर पत्रकारिता थोड़ी-बहुत कहीं प्रभावी दिखती है, तो उसका हस्तक्षेप क्यों असरदार नहीं होता?

हमारे समय की पत्रकारिता-पत्रकारों के लिए ये सबसे बड़े सवाल हैं। इनके उत्तर सहज नहीं हैं। अतीत के पन्नों और इतिहास में इन सवाल के उत्तर मिलते हैं।

### वर्ष 1974 : खबर : एक

हम छात्र थे। किशोर से युवा होने के दिन। स्कूल से कालेज या विश्वविद्यालय जाने के दिन थे। तब तक 1967-68 में शुरू हुए नक्सली आन्दोलन की आग पूरी तरह बुझी नहीं थी। उन्हीं दिनों गुजरात के मोरवी इंजीनियरिंग कालेज के विद्यार्थियों ने महंगाई, भ्रष्टाचार के खिलाफ आवाज बुलन्द की। यह आवाज, बिहार आन्दोलन

\* मुख्य सम्पादक, प्रभात खबर, राँची। + यह लेख हाल में रूपा प्रकाशन द्वारा अंग्रेजी में प्रकाशित पुस्तक, 'एसेज इन आनर आफ प्रेम भाटिया' 'द इंडियन मीडिया, इज्यूजन, डिल्यूजन एंड रियलिटी' (सम्पादक : आशारानी माथुर) में छपा है।

में बदल गयी और जेपी के नायकत्व का दूसरा दौर आरम्भ हुआ। उन्हीं दिनों 1974 के आसपास की यह खबर है।

बिहार से एक कांग्रेसी सांसद होते थे, तुलमोहन राम। उनके खिलाफ लोकसभा में एक मामला उठा। आरोप था कि किसी निजी कम्पनी के प्रभाव में आकर उन्होंने तत्कालीन रेलमंत्री ललितनारायण मिश्र की मदद से रेल बोर्ड को प्रभावित किया। रेल बोर्ड को प्रभावित कर तुलमोहन राम ने उक्त कम्पनी को प्राथमिकता के आधार पर माल वैगन आवंटित कराया। इस आरोप के अनुसार इस मदद के एवज में कम्पनी ने तुलमोहन राम को कमीशन दिए। यह मामला लोकसभा में गूँजा और संसद से सड़क पर पहुँच गया।

30-31 वर्षों पुरानी यह खबर स्मृति में क्यों ताजा है? हमारा गाँव दो नदियों के बीच है। गंगा और घाघरा। तब देश-दुनिया से पूरी तरह कटा था। साल के चार-पाँच महीने टापू के रूप में रहता था, यह गाँव। बाढ़ से घिरा। दूर-दूर तक कोई शहर, अस्पताल नहीं। आने-जाने का साधन नहीं। तब फोन-अखबार टीवी चैनलों का दौर नहीं था। सूचना क्रान्ति ने भौगोलिक दूरी को खत्म नहीं किया था। मीलों रेत पर चलकर तब मेरे गाँव में पहुँचा जा सकता था। पिछड़ापन-निरक्षरता उस गाँव को भी विरासत में मिले थे। तब तुलमोहन राम द्वारा घूस लेने की बात उस सुदूर गाँव में भी पहुँच गई। जो तब सड़क, रेल और संचार से कटा टापू था। वहाँ चौपालों में, गाँव की बैठकों में, अलावों के पास अपढ़, गंवई बड़े-बुजुर्ग-युवा चर्चा करते कि हमारे सांसद भी घूस-कमीशन लेने लगे हैं। तब तक राजनीति के गलियारे में 'दलाली' शब्द सुना नहीं गया था। 'दलाल सांसदों' की दूर-दूर तक आहट नहीं थी। राजनीति में 'लाबिस्टों' (दलाली का दूसरा नाम) का उदय नहीं हुआ था। उन दिनों जब संचार क्रान्ति नहीं हुई थी, तब एक सांसद पर लगा आरोप अपढ़ गाँव की गलियों तक बिजली की गति से पहुँच गया। देखने में भद्दे, बेतरतीब लेआउट के बावजूद तब के अखबारों-पत्रिकाओं में यह मुद्दा सुर्खियों में छा गया।

आज 2004 में लौटकर 1974 के उस दौर को देखता हूँ, तो कई सवाल खड़े होते हैं।

### वर्ष 2005 : खबर : दो

वर्ष 2004 के अंत में एच-डी. शौरी ने *इंडियन एक्सप्रेस* में (10-11-12 नवम्बर 2004) भारत की स्थिति पर अत्यन्त विचारोत्तेजक-प्रभावी लेख लिखा। तीन किशतों में। अपने एक लेख में उन्होंने उद्धृत किया, भ्रष्टाचार सूचकांक का अध्ययन करनेवाली संस्था ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल का। इस संस्था ने दुनिया के सर्वाधिक भ्रष्ट देशों में भारत को भी माना है। इसने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि पिछले एक साल में भारत के निजी घरानों-कारपोरेट हाउसों ने भारत सरकार के अफसरों को 'फेवर

पाने', 'अपने पक्ष में नीति बदलवाने', 'काट्रेक्ट' लेने के बदले 32000 करोड़ बतौर घूस दिए हैं।

1974 के मुकाबले इस देश ने काफी तरक्की की है। शिक्षित और सम्पन्न लोगों की संख्या में बेशुमार इजाफा हुआ है। यह सूचना-संचार क्रान्ति का दौर है, अब 24 घण्टे के टीवी चैनलों की बाढ़ है। बेहतर-रंगीन अखबारों की पाठक संख्या करोड़ों में पहुँच गई है। पर सरकारी अफसरों द्वारा 32000 करोड़ बतौर घूस लेने की यह खबर, या ऐसे दूसरे तथ्य अब 'मीडिया' में नहीं उठते-गूँजते। न ही लोकसभा-राज्यसभा में यह मामला उठा।

1974 और 2005 की इन दो महत्वपूर्ण खबरों-दृश्यों को साथ रखकर तौलने से अनेक रहस्य खुलते हैं।

1974 तक एक सांसद द्वारा महज डेढ़ लाख बतौर घूस या कमीशन लेने का आरोप देशव्यापी सवाल बन जाता था। 2004-05 आते-आते, भारत की नौकरशाही पर फेवर के एवज में 32,000 करोड़ घूस लेने का आरोप लगता है, पर संसद में एक सवाल नहीं उठता? यह फर्क महज 30-32 वर्षों में? इसकी मूल वजह है कि पूरी राजनीति से विचारधारा या बाद गायब हो गए हैं। जब विचार, आदर्श और सपने राजनीति से गायब हो जाएँगे, तो राजनीति बाँझ हो जाएगी। भारत की राजनीति इसी विचारहीनता और बाँझपन के दौर में है। इसलिए इस मौजूदा राजनीति में बड़े बदलाव-परिवर्तन की आहट नहीं है। विचारों-सिद्धान्तों की राजनीति से ही समाज बदलता है, यह स्थापित तथ्य है। पत्रकारिता या किसी अन्य पेशे में वह ताकत नहीं है कि नया समाज गढ़ सके। पत्रकारिता अपनी सर्वश्रेष्ठ भूमिका में 'वाचडोग' का ही काम कर सकती है। लेकिन समाज बदलने की ताकत सिर्फ विचारों-सिद्धान्तों की राजनीति में ही होती है। विचारधारा या वाद विरोधी लोग सवाल उठा सकते हैं कि विचारधाराओं की अति से ही फासिज्म, उन्माद, धर्माधता, तानाशाही जन्मते हैं। आरम्भ में ही यह समझ लेना होगा कि ये सब विचारधाराएँ या वाद नहीं हैं, मानव का अस्तित्व मिटा देनेवाली धाराएँ हैं। इस विश्लेषण में विचारधारा या वाद के तहत ऐसी उन्मादी प्रवृत्तियों को माना ही नहीं गया है।

राजनीतिक विचारधारा एक रणनीति, कौशल और कला है सर्वाधिक पीड़ित, गरीब, जरूरतमंद से लेकर आम नागरिकों का जीवन सुधारने-बेहतर करने का माध्यम। मानव समाज को लगातार बेहतर-से-बेहतर स्थिति में पहुँचाने का अनुशासन और सीढ़ी है, राजनीतिक विचारधारा। विचारधारा के प्रति प्रतिबद्धता से सपने जगते हैं। आदर्श-प्रतिबद्धता का माहौल बनता है। आन्दोलन-संघर्ष पनपते हैं। विचारधारा से पनपे सामूहिक सपने को साकार करने के लिए लाखों की भीड़ जमा होती है। यह राजनीतिक जमात-भीड़ या समूह विचारधारा के कारण ही दल में तब्दील होते हैं। इस तरह विचारधारा आधारित दलों का जन्म होता है।

तीन दशक पहले तक समाजवादी, साम्यवादी, जनसंघ, कांग्रेस, नक्सली वगैरह सबके अपने-अपने सपने आर्थिक-सामाजिक कार्यक्रम थे। नक्सली इस सन्दर्भ में दल नहीं थे। वह विचारधारा थी। पर मध्यममार्गी दलों के पहले वार्षिक अधिवेशन होते थे। कार्यक्रमों पर बहस होती थी। नीतियाँ तय होती थीं। पार्टी की विचारधारा के अनुरूप कार्यक्रम बनते थे। पार्टी में अन्दरूनी लोकतंत्र था। पार्टियों के अन्दर चुनाव होते थे। पार्टी आलाकमान की निजी पसन्द के खिलाफ उसी पार्टी में अपने विचार-प्रतिबद्धता के कारण नेता, पार्टी संगठन चुनावों में जीतते थे। उन कार्यक्रमों को साकार करने के लिए विधायिका से लेकर लोक के बीच बहस होती थी। संसद से सड़क तक दल अपने बुनियादी मुद्दे उठाते थे। उन मुद्दों के इर्द-गिर्द समर्थन जुटाते थे। अपने राजनीतिक उसूलों विचारों और प्रतिबद्धता के अनुरूप नेता-कार्यकर्ता जीते थे, पहचाने जाते थे। कार्यक्रमों-विचारधारा से दल-नेता की पहचान होती थी। गांधी की भाषा में कहें तो 'साधन' (जीवनशैली, पार्टी रणनीति, पार्टीलाइन) 'साध्य' (विचारधारा) के अनुरूप होता था। 60-70 के दशकों तक इन मूल्यों का भारतीय राजनीति में असर था। उन्हीं दिनों चुनाव सुधार की चर्चा शुरू हुई। जेपी के आह्वान पर भ्रष्टाचार पर अंकुश के लिए संस्थानम कमेटी बनी। डॉ. राममनोहर लोहिया ने भाषा की गैरबराबरी का सवाल उठाया। विषमता के खिलाफ संघर्ष किया। जेल गए। महंगाई के खिलाफ दाम-बांधों आन्दोलन चलाया। जाति उन्मूलन को मुद्दा बनाया। सप्त क्रान्ति (समाज-देश बदलने की रणनीति) की बात थी। 1960 के बाद लगातार उन्होंने निहत्थी जनता पर पुलिस की गोलीबारी, जातिगत गैर बराबरी, अंग्रेजी भाषा के प्रभुत्व, शासक वर्ग की विलासिता, दामों की लूट, पूंजीशाही-नेताशाहों-नौकरशाहों की सांठगांठ को मुद्दा बनाया। संसद से सड़क तक लोहिया की पार्टी ने नए सवाल उठाए।

परिणाम? 1966-67 तक अनेक राज्यों में गैर कांग्रेसी सरकारें बनीं। चौथे आम चुनाव में इस विचारगत राजनीति का चमत्कार दिखा।

उन्हीं दिनों स्वतन्त्र पार्टी का उदय हुआ। निजी क्षेत्र को प्राथमिकता देने और कांग्रेस सरकार के 'लाइसेंस कोटा परमिट राज' संस्कृति के खिलाफ। एक वैकल्पिक आर्थिक नीति के साथ। इस दल को विचारों के आधार पर पूंजीपति वर्ग का समर्थक माना गया। पीलू मोदी, मीनू मसानी, प्रो एन.जी. रंगा वगैरह ने अपनी वैचारिक मान्यता के आधार पर पार्टी को आगे बढ़ाया। चक्रवर्ती राजगोपालाचारी का आशीर्वाद इस दल को प्राप्त था। उसी तरह जनसंघ के प्रवर्तक डॉ. दीनदयाल उपाध्याय 'मानव एकात्मवाद' से लेकर 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' के मुद्दे पर देश में अपनी पार्टी को खड़ा करते रहे। बंगाल में माकपा के प्रमोद दासगुप्त गाँव-गाँव माकपा की विचारधारा के अनुरूप कार्यकर्ताओं की फौज खड़ी करते रहे। हर गाँव में 'लाइब्रेरी खोलने' का अभियान चलाया। प्रमोद दासगुप्ता के इस वैचारिक आन्दोलन की बुनियाद पर ही बंगाल में मार्क्सवादी 1977 के बाद से कायम हैं।

समाजवादी राममनोहर लोहिया हों या जनसंघी दीनदयाल या मार्क्सवादी प्रमोद दासगुप्त। इनमें एक विचित्र समता थी। डॉ. लोहिया मरे, तो पास में दो जोड़ी धोती भी नहीं थी। कोई निजी सम्पत्ति नहीं। उसी तरह दीनदयाल जी की हत्या हुई, तो पास में कुछ नहीं था। प्रमोद दासगुप्त ने सब कुछ अपनी पार्टी और उसकी विचारधारा के लिए लगा दिया। विचारधारा के स्तर पर इन तीन ध्रुवों के नेताओं पर गांधीवादी राजनीतिक जीवनशैली की छाप थी। गांधीवाद का वैचारिक असर निजी जीवन, रहन-सहन में था। अपने-अपने दल के कार्यकर्ताओं के निजी जीवन दर्शन पर डॉ. लोहिया, दीनदयाल उपाध्याय और प्रमोद दासगुप्त जैसे नेताओं का गहरा असर था। गाँव-गाँव तक ऐसे नेताओं की प्रेरणा से विचारधारा के ईर्द-गिर्द राजनीतिक कार्यकर्ताओं की फौज खड़ी हुई। प्रतिबद्ध, ईमानदार और कर्मठ कार्यकर्ता साथ आए। ऐसे ही लोगों-विचारों की नींव पर ये दल खड़े हुए।

खुद कांग्रेस में वैचारिक मुद्दों के प्रति 1970-72 तक जागरूकता थी। वैचारिक आग्रह था। युवा तुर्क का उदय, बैंक राष्ट्रीयकरण, कोयला खदानों का राष्ट्रीयकरण, गरीबी हटाओ जैसे कार्यक्रम, वैचारिक राजनीति के ही प्रतिफल थे। तब तक कांग्रेस में अंदरूनी लोकतंत्र भी था। इंदिरा गांधी की इच्छा के खिलाफ शिमला कांग्रेस कार्य समिति के चुनाव में युवा तुर्क चंद्रशेखर सबसे अधिक मत पाकर चुने गए। यह वैचारिक द्वन्द्व का परिणाम था। यह 1972 की घटना है। हालाँकि इस बात को भी हम विस्मृत नहीं कर रहे हैं कि भाकपा-माकपा के कांग्रेस होते हैं। भाजपा का भी अधिवेशन होता है। माले जैसी पार्टियाँ भी आंतरिक लोकतंत्र की पहल लेती हैं। मुख्यधारा की राजनीति में इन उदाहरणों को लिया जा सकता है। तेदेपा के अधिवेशन की चर्चा भी की जा सकती है। वृहत्तर अर्थों में कहा जा सकता है कि ज्योतिबसु को सीपीएम ने आंतरिक लोकतंत्र के कारण प्रधानमंत्री नहीं बनने दिया। लेकिन ग्लोबल अर्थ व्यवस्था का विरोध-समर्थन सभी रस्मी बनकर क्यों रह गए है और वैचारिक मसले पार्टी कतारों में कम क्यों रहे हैं। यह गम्भीर सवाल है।

1972 आते-आते आजादी की लड़ाई के मूल्य, सरोकार और असर कम होने लगे। विचार या उसूल कैसे समाज बदलते हैं। यह देखना हो तो भारत की आजादी की लड़ाई का स्मरण करना होगा। गांधी के उदय ने गुलाम और अनपढ़ भारत की फिजां बदल दी। गांधी एक व्यक्ति नहीं रह गए, वह एक जीवनशैली, विचारधारा और राजनीतिक संस्कृति (मूल्य आधारित) बन गए। उनकी राजनीति ने जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित किया। उनके आन्दोलन से उनके असर से एक से बढ़कर एक समाजसेवी निकले। वकालत के क्षेत्र में, अध्यापन के क्षेत्र में, पत्रकारिता के क्षेत्र में गांधीवादी मूल्यों ने एक नई ताकत, आभा और ऊर्जा दी। निष्ठावान, प्रतिबद्ध और वैचारिक लोगों को आगे बढ़ाया। ऐसे लोगों ने त्याग, ईमानदार कर्म और गांधीवादी जीवनमूल्यों से आस्था और विश्वास का एक नया माहौल बनाया। लगा कि जहाँ

हिंसक क्रान्ति समाज बदलाव-व्यवस्था में विफल हो गई है, वहाँ गांधीवादी सत्याग्रह और अहिंसा कामयाब होंगे। यह गांधीवादी विचारों का ही चमत्कार था।

पत्रकारिता का स्वर्ण युग माना जाता है, आजादी की लड़ाई का दौर। पत्रकारों-अखबारों के उस दौर के योगदान-बलिदान को आज भी उद्धृत किया जाता है। इलाहाबाद से एक अखबार निकलता था 'स्वराज्य'। 'स्वराज्य' के जितने भी सम्पादक हुए, उन्हें कालापानी की सजा (अण्डमान जेल) हुई, इसलिए 'स्वराज्य' के सम्पादक का पद खाली होता, तो विज्ञापन में योग्यता की मांग होती, जो अण्डमान जेल जाने के लिए तैयार हो, वही आवेदन करें। तब भी योग्य से योग्य आवेदकों की लाइन लगी रहती। अपने विचारों-आग्रह के लिए जेल जाने को तैयार। कष्ट उठाने के लिए तैयार। वह सत्ता की कुर्सी या विधायक/सांसद/मंत्री बनने वालों की भीड़ नहीं थी। यह गांधी युग का चमत्कार था। उनके विचारों का जादू था। पत्रकारिता का नहीं। गांधी युग ने जिन मूल्यों, उसूलों की बात की, सत्याग्रह, अहिंसा का प्रतिपादन किया, समाज के कमजोर से कमजोर व्यक्ति को 'अन्तिम व्यक्ति' माना, इन विचारों के पारस पत्थर से जुड़कर-स्पर्श पाकर, पत्रकारिता निखरी, वकालत पेशा निखरा, अध्यापक सम्मानित हुए, अपने तप-त्याग से समाजसेवियों ने अपनी जगह बनाई। इन बदलावों के मूल में थी, गांधीवादी विचारधारा। इस विचारधारा ने एक मरते हुए पिछड़े भारतीय समाज को उत्कर्ष पर पहुँचा दिया। हजारों वर्ष की गुलामी से पीड़ित भारतीय समाज को पैरों पर खड़ा कर दिया। दुनिया को लगा, भारत से नए मूल्य निकल रहे हैं, जो मानवता को मुक्ति द्वार तक पहुँचाएँगे। तब प्रो. अर्नाल्ड टायनबी ने लिखा कि संकटग्रस्त पश्चिमी सभ्यता को पूरब से (आशय भारत से) नई राशनी मिलेगी। यह मूल्यबोध की राजनीति का असर था। गुलाम भारत से रोशनी के लिए विकसित पश्चिमी देश प्रतीक्षारत थे।

गांधी की राजनीति का आकर्षण क्या था? चितरंजन दास (सी.आर. दास) जैसे बड़े बैरिस्टर जो उन दिनों लाखों की प्रैक्टिस करते थे, आमद-वकालत छोड़कर आन्दोलन में कूद गए, नया समाज बनाने के लिए। भौतिक सुविधाएँ छोड़कर जेल की राह चुनी। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में वे आर्थिक परेशानियों से जूझ रहे थे। वह अकेले नहीं थे। सी.आर. दास जैसे अनेकों लोगों ने अपने 'निजी कैरियर' आकांक्षाएँ महात्वाकांक्षाएँ, देश के लिए होम कर दिए। समृद्धि, भौतिक सुख का जीवन छोड़कर गरीबी, कष्ट और जेल की राह चुनी, लाखों युवा निकल पड़े। यह था विचारों का आकर्षण। गांधीवादी विचारों का चमत्कार!

इतिहासकार कहते हैं कि गांधी के उदय के पूर्व भारतीय 'इलीट वर्ग' की बात करनेवाली कांग्रेस, अंग्रेजों के सामने पटीशन (याचिका) देनेवाली संस्था थी। प्रेयर (गिड़गिड़ाने-प्रार्थना करनेवाली संस्था) करनेवाली पार्टी थी। पर गांधी के साथ ही वही कांग्रेस 'मास मूवमेंट' (जन आन्दोलन) में तब्दील हो गई। यह था, गांधीवादी

विचारों-मूल्यों का प्रभाव। मार्क्सवादी मानते हैं कि इतिहास दोहराता है। हालाँकि विसंगति के रूप में। कुछ वर्षों पूर्व कांग्रेस ने 'दांडी मार्च' की पुनरावृत्ति की है। क्या यह दोहराव उस जादू का एहसास करा पाया? जब गांधी ने दांडी मार्च शुरू किया, तो ब्रिटिश सत्ता ने मखौल बनाया। पर जब दांडी मार्च खत्म हुआ, पूरी दुनिया स्तब्ध और चमत्कृत थी। यह पश्चिम के मैकियावेली राजनीतिक दर्शन का गांधीवादी उत्तर था।

आजादी के बहुत बाद तक गांधीवादी विचारों का असर रहा। विचारहीन दौर (1980 के आसपास शुरू) के नेताओं की जमात जब प्रभावी होने लगी, तब बचे-खुचे पुराने नेता अपने-अपने दलों में अलग-थलग पड़ गए या राजनीति से ही हट गए। यह वह समय था, जब इंदिरा गांधी ने कहा कि भ्रष्टाचार अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्ति है। कांग्रेस के अन्दर आलाकमान की निरंकुशता इंदिराजी के समय ही बढ़ी। कांग्रेस का अंदरूनी लोकतंत्र खत्म हुआ। विधायिका, न्यायपालिका, कार्यपालिका व अन्य संस्थाओं को इंदिरा युग ने भारी नुकसान पहुँचाया। चापलूस, दलाल और मौकापरस्तों की भीड़ को उन्होंने हर जगह शिखर तक पहुँचाया। जिनके लिए आदर्श, सिद्धान्त और मूल्य महज सत्ता पाना था, ऐसे लोगों की भीड़ ने सत्ता पाकर गांधी युग के मूल्यों को राजनीति से खत्म कर दिया। सत्ता, सुविधा व पैसे के लिए विचारहीन राजनीति और रातोंरात दल बदलना फैशन हो गया।

विचारों की राजनीति (1980 तक) और विचारहीनता के दौर की राजनीति (1980 के बाद) के दलों-नेताओं के आचरण, जीवनशैली और प्रतिबद्धता के बीच फर्क आसान है।

- 1995 में प्रधानमंत्री पर आरोप लगा कि लोकसभा में चार सांसदों को रिश्वत देकर उन्होंने अपनी सरकार बचायी। अदालत में अपने तकनीकी बचाव में उस प्रधानमंत्री ने देश के जाने-माने बड़े वकीलों को उतारा।
- आजादी की लड़ाई के दौरान चर्चिल ने महात्मा गांधी को 'नंगा फकीर' कहा था। 1922 में गांधी जी देशद्रोह के आरोप में पकड़े गए। जमानत पर उन्हें रिहा करने की पेशकश हुई। वैरिस्टर गांधी ने इनकार कर दिया। मुकदमे की सुनवाई में बचाव के लिए कोई वकील नहीं रखा। कहा, मैं कानूनी पेंचीदगियों में अपना बचाव नहीं करना चाहता, मेरे खिलाफ देशद्रोह के जो भी आरोप सरकारी वकील ने लगाए हैं, सही हैं। मैं अपने सिद्धान्त पर कायम हूँ।

अपने उसूलों-सिद्धान्तों के प्रति यह प्रतिबद्धता आजादी की लड़ाई में गाँधी ने विकसित की। इस परिवेश का असर था कि रेलमन्त्री लालबहादुर शास्त्री ने रेलदुर्घटना का नैतिक दायित्व लेते हुए इस्तीफा दे दिया था। प्रधानमन्त्री का पद महज एक सवैधानिक गद्दी नहीं है, उसकी एक नैतिक आभा-ऊँचाई है। पूरा देश जानता है कि

सांसदों को रिश्वत दे कर नरसिंह राव की सरकार बची, पर तत्कालीन प्रधानमन्त्री नहीं मानते थे। सांसदों को रिश्वत देकर उनकी गद्दी बच गई, पर प्रधानमन्त्री पद की आभा-चमक-नैतिक ताकत खो गई। यह विचारविहीन सिद्धान्त विहीन राजनीति का असर था। 1980 में मोरारजी की जनता पार्टी की सरकार गिरी, तो दोबारा उन्होंने जोड़-तोड़ से सरकार बनाने से मना कर दिया। यह फर्क उल्लेखनीय है। *एशियन एज* में (25 मार्च 2005) भारतीय राजस्व सेवा के अधिकारी विश्वबन्धु गुप्ता ने देश के वित्त मन्त्री को सार्वजनिक जानकारी देते हुए एक अत्यन्त महत्वपूर्ण लेख लिखा है, '*सम क्वेश्चंस फॉर मिस्टर चिदम्बरम*'। इस लेख में अनेक विस्फोटक सूचनाएँ हैं। मसलन एक ताकतवर निजी घराने के पास 2000 फर्जी कम्पनियाँ हैं। श्री गुप्ता के अनुसार यह जानकारी आयकर विभाग और भारत सरकार को है, पर कोई कार्रवाई नहीं हो रही। तेलगी प्रकरण (जिसमें अनेक बड़े नेता-अफसर शामिल हैं) में 35,000 करोड़ रुपए के घोटाने की पुष्टि हो चुकी है। पर जाँच आगे नहीं बढ़ रही। रिलायंस शेयर प्रकरण में एक सांसद और एक पूर्व मन्त्री (एक काँग्रेस-एक भाजपा) ने कैसे सैकड़ों करोड़ के शेयर लिए, यह तथ्य सार्वजनिक हो गया है। श्री गुप्ता के अनुसार भारत में मोटे तौर पर सालाना 10 लाख करोड़ का काला धन सरकुलेट हो रहा है। भारत सरकार के वित्त मन्त्रालय के अन्तर्गत कार्यरत एक अफसर ने इन विस्फोटक सूचनाओं पर अखबार में लेख लिखा है, सार्वजनिक रूप से उठाया है। सरकार उस पर कार्रवाई कर सकती है, पर इन मामलों पर जाँच नहीं करा सकती। केन्द्र सरकार की जानकारी में पेट्रोल मिलावट में सालाना 40,000 करोड़ रुपए का घोटाला हो रहा है। भारत सरकार के एक उच्चाधिकारी (जो स्वैच्छिक अवकाश लेने के लिए बाध्य किए गए) एलएन शास्त्री ने जब यह प्रकरण उठाया, तो वह बदल दिए गए। विचारहीन राजनीति के ये मामूली उदाहरण हैं। सार्वजनिक लूट-भ्रष्टाचार के ऐसे असंख्य प्रकरण गली-गली में हैं।

पर अब शायद ही लोगों को याद हो। रफी अहमद किदवई नामक एक नेता थे। कानून की डिग्री थी उनके पास, पर कभी वकालत नहीं की। उत्तर प्रदेश के बाराबंकी के रहनेवाले। वहाँ मिट्टी का पुश्तैनी घर था। खपरैल। आजीवन केन्द्रीय मन्त्री रहे। पर मरने के बाद उनकी पत्नी और बच्चे गाँव, बाराबंकी लौट आए। उसी टूटे-फूटे खपड़ैल घर में। आजीवन केन्द्रीय मन्त्री और काँग्रेस के कद्दावर नेता रहने के बावजूद उनके पास कोई सम्पत्ति नहीं थी, दिल्ली में घर नहीं था। स्वतन्त्रता सेनानी किदवई साहब अकेले, गाँधीवादी राजनीति के पुष्प नहीं थे। राजनीति में सिद्धान्तों-विचारों पर चलनेवाले ऐसे लोगों की तब लम्बी कतार थी।

आचार्य पुरुषोत्तम दास टंडन, आचार्य नरेन्द्र देव, लालबहादुर शास्त्री जैसे लोगों या पीढ़ी की बात छोड़ दें, गाँधी की आभा में आगे बड़े काँग्रेस के मामूली कार्यकर्ताओं का चरित्र, गाँव-जिला स्तर पर जनता को प्रेरित करता था।



यह पवित्रता, नैतिक आभा, प्रतिबद्धता और मूल्य सिर्फ राजनीति में ही नहीं थे।

इलाहाबाद हाईकोर्ट के एक रिटायर्ड जज थे, एस. के. धर। वे तीन वर्ष से कुछ कम समय तक जज रहे। इसलिए उन्हें पेंशन नहीं मिला। वह रिटायर्ड जज थे, इसलिए इलाहाबाद उच्च न्यायालय में प्रैक्टिस नहीं कर पाए। वह दिल्ली चले गए। उनकी आँखों में समस्या हुई। वह अपने गृह शहर आगरा लौट गए। आर्थिक रूप से अत्यन्त कठिनाई के दिन थे उनके। उन्हीं दिनों कलकत्ता के मुख्य न्यायाधीश ने उनसे एक काम में 'आर्बिट्रेटर' बनाने का आग्रह किया। सप्ताह में सिर्फ पाँच दिन काम करना था। धर साहब ने मना कर दिया। कलकत्ता उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को लगा कि फी कम होने से धर साहब ने मना किया है। उन्होंने पुनः प्रस्ताव भेजा। फी 50,000 से बढ़ा कर एक लाख का प्रस्ताव दिया। धर साहब ने कलकत्ता के मुख्य न्यायाधीश को पत्र लिखा। आभार जताया। कहा कि मैंने यह प्रस्ताव 'फी' के लिए अस्वीकार नहीं किया है। मुझे पैसे की सख्त जरूरत है। पर, यह अस्वीकार इसलिए किया है कि जिस न्यायाधीश के पद पर तीन वर्ष से कम रहा, उसकी गरिमा-मर्यादा पर मेरे किसी काम से आँच न आए। न्यायापालिका में ऐसे अनेक धर थे। नौकरशाही और राजनीति में भी।

यह नैतिक बोध, ऊँचे जीवन मूल्य कहाँ से मिले, गुजरी पीढ़ी को? दूसरा उदाहरण है, कैलाशनाथ काटजू का। श्री काटजू स्वतन्त्रता सेनानी थे। इलाहाबाद उच्च न्यायालय के मशहूर वकील। आजादी के बाद वह उड़ीसा-बंगाल के राज्यपाल बने। उनके पुत्र शिवनाथ काटजू इलाहाबाद उच्च न्यायालय में (उम्र लगभग 40 वर्ष) औसत प्रतिभा के वकील थे। ब्रिटिश इण्डिया कारपोरेशन (जिसका उत्तर प्रदेश में कारोबार था) के चेयरमैन सर राबर्ट मेनजीन ने शिवनाथ काटजू को अपनी कम्पनी के बोर्ड आफ डाइरेक्टर में रखने का प्रस्ताव दिया। शिवनाथ काटजू ने अपने राज्यपाल पिता को कलकत्ता में पत्र लिख कर यह सूचना दी। कैलाशनाथ जी ने अपने बेटे को पत्र लिखा। प्रिय शिवाजी! तुम्हारा पत्र पा कर एक पिता के रूप में गौरव का बोध हुआ। बीआइसी कम्पनी में हमारे शेयर बहुत कम हैं। इसलिए कम शेयर के आधार पर तुम्हें 'बोर्ड आफ डाइरेक्टर' में रखा जाना युक्तिसंगत नहीं लगता। सम्भव है तुम्हारी योग्यता के आधार पर यह पद आफर हुआ हो। यह मेरे लिए और भी गौरव की बात है। लेकिन तुम्हारी एक समस्या है, और वह है, तुम्हारे पिता। हालांकि बंगाल में बीआइसी कम्पनी का कुछ नहीं है। गवर्नर सिर्फ 'कास्मेटिक पद' है। मैं तुम्हारे सम्मान-योग्यता के अनुरूप किसी अन्य राज्य में तुम्हें ऐसा पद पाते देखना चाहूँगा। अपने गृह राज्य (कैलाशनाथ काटजू उत्तर प्रदेश के रहनेवाले थे) में नहीं। मैं जीवन में अपनी पारी खेल चुका हूँ। तुम्हारे रास्ते में नहीं आना चाहता। अगर तुम बीआइसी

बोर्ड आफ डाइरेक्टर में जाने की सहमति दोगे, तो मुझे सूचना दे देना। मैं राज्यपाल का पद छोड़ कर इलाहाबाद उच्च न्यायालय में प्रैक्टिस करने लौट आऊँगा।

पुत्र शिवनाथ काटजू ने बीआइसी कम्पनी का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया और कैलाशनाथ काटजू बंगाल के गवर्नर बने रहे। राजनीति में यह नैतिक ऊँचाई किन सामाजिक-राजनीतिक मूल्यों से तब देश को मिली?

भारत के प्रधानमन्त्री थे, पंडित जवाहरलाल नेहरू। उनके घर को इन्दिरा गाँधी सम्भालती थी। राजीव, ब्रिटेन पढ़ने गए थे। राजीव गाँधी ने अपना खर्च चलाने के लिए नाना को कुछ और पैसे भेजने का आग्रह किया, पत्र लिखकर। पण्डित नेहरू ने राजीव गाँधी को पत्र लिखा। तुम्हारे आर्थिक संकट की चर्चा पढ़ कर मुझे कष्ट हुआ। यकीन है कि तुम मेरी बात पर विश्वास करोगे कि तुम्हें जो कुछ भी भेज पा रहा हूँ, उतना ही मैं अपनी तनख्वाह और पुस्तक रायल्टी (आजकल लोग मेरी पुस्तकें कम पढ़ रहे हैं) की मामूली आय से निकाल पाता हूँ। क्यों नहीं तुम खाली समय में कुछ काम करते हो! अधिकांश विद्यार्थी खास तौर से दूसरे देशों से गए विद्यार्थी ऐसा ही करते हैं। इस तरह तुम भी शान्ति से रहोगे और मुझे भी चैन रहेगा।

यह पत्र एक प्रधानमन्त्री ने अपने वारिस को लिखा था। यह विचारों की राजनीति के दिनों की बात है।

विचारहीन राजनीति के दिनों का एक उदाहरण। 1995 के शुरू में अखबारों की सुर्खियों में खबर थी। एक सांसद के पुत्र को इन्जीनियरिंग कालेज में दाखिला मिला। कैपिटेशन फी माफ कर दिया गया। उस लड़के को विश्वभ्रमण पर कालेज ने भेजा। विदेश यात्रा के हवाई खर्च और आवभगत की जिम्मेवारी देश के दो बड़े औद्योगिक घरानों ने उठाई।

एक दौर था, जब देश का प्रधानमन्त्री अपने वारिस की पढ़ाई का खर्च नहीं उठा पाता था। दूसरा दौर आया कि एक मामूली सांसद के विद्यार्थी बेटे पर करोड़ों खर्च करनेवाले तैयार थे।

पहले दौर के सामाजिक मूल्य (जो राजनीति ने तय किए) में शार्टकट से समृद्धि, उसूलों के खिलाफ माने जाते थे। शेयर बाजार या स्ट्रे से धन कमाना, सामाजिक हैसियत-रूतबा नहीं बढ़ाता था। गरीब का श्रम, काली कमाई से ज्यादा सम्मानजनक माना जाता था। पण्डित नेहरू, बेंजामिन फेंकलिन की उक्ति दुहराते थे। एक युवक के जीवन में सबसे दुखद और अन्धकारमय क्षण वह है, जब वह बिना श्रम किए पैसा पाना चाहता है।

श्रम, ईमानदारी के ऊपर पूँजी, छल-कपट की विजय और बिना परिश्रम के काली कमाई की संस्कृति का विकास, विचारहीन राजनीति के उल्लेखनीय पहलू हैं।

गाँधी युग के नेताओं के आचरण की घटनाएँ उन दिनों की हैं, जब राजनीति के फोकस में गाँधी का अन्तिम आदमी था। लोकसभा में काँग्रेस सरकार के खिलाफ

डॉ. लोहिया ने पहला अविश्वास प्रस्ताव पेश किया। नेहरू जी प्रधानमंत्री थे। डॉ. लोहिया ने गरीबी का मुद्दा उस अविश्वास प्रस्ताव में उठाया।

एक दौर यह है कि बड़े घरानों के पक्ष-विपक्ष में उनके अनुरूप नीतियाँ बदलवाने के लिए सांसद दस्तखत करते घूमते हैं। राज्यसभा में पूँजी के बल पहुँचने वाले सांसदों की संख्या देखी जा सकती है। बेशर्म लॉबिस्ट दलाल और घोर अयोग्य लोग किन खूबियों के कारण विधायिका में पहुँच रहे हैं, यह पूरा देश-मीडिया देख रहा है।

तब संसद (विधायिका) में बहस-सवालों का चरित्र और स्तर भिन्न था, इस बहस के केन्द्र में गाँधी का 'अन्तिम आदमी' था। दरअसल सिद्धान्त की राजनीति-विचारों की राजनीति-मूल्यों की राजनीति, कार्यक्रमों-नीतियों के आधार पर चलती है। इस राजनीति में साधन और साध्य नैतिक अंकुश के रूप में काम करते हैं। अब मूल्यविहीन राजनीति के केन्द्र-फोकस में महज सत्ता पाना है। साध्य, सत्ता है। उसे पाने के लिए कोई साधन इस्तेमाल करने में हिचक नहीं है। चाहे कॉंग्रेस द्वारा सांसदों को रिश्वत देकर अपने पक्ष में करने का सवाल हो या भाजपा द्वारा सुखराम जैसे लोगों की मदद से सरकार बना कर भय, भूख और भ्रष्टाचार मिटाने का नारा लगाना हो। यह कर्म करते हुए किसी को शर्म, या पछतावा नहीं है, क्योंकि कोई मूल्य, आदर्श या विचार बचे ही नहीं हैं।

1990 के आसपास सोवियत रूस के विघटन के तत्काल बाद ही अन्तर्राष्ट्रीय चिन्तक-विचारक फ्रांसिस फुकियामा ने कहा कि अब इतिहास का अन्त हो गया है। विचारधारा खत्म हो गई है। हालाँकि इतिहास बताता है कि बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक वर्ष सार्वजनिक जीवन को विचारों-सिद्धान्तों से प्रभावित करने वाले सबसे प्रभावी वर्ष थे।

सर्वोदयी विचारक दादा धर्माधिकारी अक्सर कहते थे, अपनी एक पुस्तक में लिखा भी है, कि पहले कहा गया था कि दुनिया डार्विन के मत्स्य न्याय से चलती है। उसने प्रकृति का नियम बताया कि बड़ी मछली, छोटी मछलियों को खा कर ही जीवित रहती है। फिर हक्सले के विचार ने समाज को प्रभावित किया। हक्सले ने एक कदम बढ़कर कहा 'जियो और जीने दो'। तब राजसत्ता का प्रतीक राजा होता था। उसके हाथ में 'अनियन्त्रित राजसत्ता' थी। हॉब्स ने इसका पूरा ब्योरा दिया है। लॉक ने एक कदम आगे जाकर 'नियन्त्रित राज्यसत्ता की बात की। रूसो ने आगे बढ़ कर लोकसत्ता का सपना दिखाया। इसके बाद आया गरीबों का मसीहा मार्क्स। उसने गरीबों के लोकतन्त्र की अवधारणा विकसित की। मार्क्स के पहले किसी पीर-पैगम्बर या धर्म प्रवर्तक ने ऐसा नहीं माना था कि अमीरी-गरीबी को गरीबों के शासन द्वारा हटाया जा सकता है। उसने साफ-साफ कहा 'अमीरी और गरीबी भगवान की बनाई हुई नहीं है। किसी भी धर्म में उसका विधान नहीं है, यदि कोई धर्म इस भेद को मंजूर करता है, तो वह धर्म गरीब के लिए अफीम की गोली है।'

20वीं सदी के शुरुआती दौर में ही विचार और सिद्धान्त के स्तर पर बदलाव की इस अवधारणा को आगे बढ़ाया गाँधी ने। उन्होंने मनुष्य के मन बदलने की बात की। स्थायी परिवर्तन के लिए अहिंसा, सत्याग्रह की अवधारणा विकसित की।

19वीं सदी के अन्त और 20वीं सदी के आरम्भ में विचारों के स्तर पर चल रहे इन द्वन्द्वों का समाज-दुनिया पर क्या असर पड़ा? मानवसमाज पूँजीवाद से समाजवाद, साम्यवाद, कल्याणकारी लोकतन्त्र के द्वार-द्वार मुक्ति के लिए भटकता रहा। बीसवीं शताब्दी की जवानी ही विचारों पर आधारित सामाजिक-राजनीतिक क्रान्ति से शुरू होती है। 1917-20 के बीच रूस की क्रान्ति। लेनिन की बोल्शेविक क्रान्ति ने दुनिया को क्या दिया? खर पत्रकार राजेन्द्र माथुर को स्मरण करें, तो दस दिन, जिन्होंने दुनिया को हिला दिया। आनेवाले साठ वर्षों तक दुनिया के देशों-विचारकों-राजनेताओं को वह वैचारिक अस्त्र दिया। जिससे लगा कि एक प्रयत्न और हुआ कि सारी धरती, सारा समाज स्वर्ग के द्वार तक पहुँच जाएगा। तब कौन जानता था कि स्वर्ग के पट कभी नहीं खुलते। मानव नियति यही है कि मुक्ति द्वारा तक पहुँच कर छले जाएँ। रूस का साम्यवाद, रूस के राज्यवाद में बदल गया।

फिर एक नया प्रयोग दुनिया ने देखा। राजेन्द्र माथुर ने माना कि गाँधी का सत्याग्रह, लगभग मुर्दा देश-गुलाम समाज का एक नया मन्त्र-प्रयोग था। इसने अन्यायी की आँख में आँख डाल कर देखने की ताकत दी। इस प्रयोग से यह एहसास जगा कि भारत जीवित है। हम गाने लगे कि यूनान, मिस्र और रोम नष्ट हो गए, फिर भी हम बचे हैं। पर गाँधी का प्रयोग भी मुक्ति द्वार के पहले ही ठहर गया। पुनः राजेन्द्र माथुर के शब्दों को दोहराएँ तो लेनिन का स्वप्न (साम्यवाद) कोसिगिन तक आते-आते एक स्थावर सम्पत्ति बन गया। गाँधी का स्वप्न भी आज एक स्थावर सम्पत्ति है,...

विचारविहीन राजनीति को समाजवाद, साम्यवाद, गाँधीवाद, कल्याणकारी लोकतान्त्रिक व्यवस्था की विफलताओं से ऊर्जा मिली। ग्लोबलाइजेशन (खगोलीकरण), मार्केट इकॉनॉमी (बाजार व्यवस्था), ग्लोबल विलेज (गाँव बनती दुनिया) के इस नए दौर के मूल में है, अमेरिका का विराट उद्योगवाद, विज्ञानवाद, बाजारवाद, अमेरिकी संस्कृति और उपभोक्तावाद। समाजशास्त्री इसे कोला कल्चर भी कहते हैं। इसमें खुलापन है। यह युवाओं को आकर्षित करती है। मुक्त सेक्स और बन्धनरहित जीवन की बात करती है। यह सिर्फ फास्टफूड से ऊर्जा नहीं पाती, फास्ट लाइफ इसकी खूबी है। व्यक्तिवाद इसकी पहचान है। यह समूह की नहीं, निजता की बात करती है। आज पूरी दुनिया या युवा (धर्म, क्षेत्र को भूला कर) इसके प्रभाव में है। फास्ट फूड, फास्ट संगीत, फास्ट जीवन, क्षण में जीना, मौज-मस्ती, पीना-पिलाना, पार्टियाँ और वर्जनाहीन जीवन, यह ग्लोबल संस्कृति उभर रही है। सौजन्य अमेरिका। उदारीकरण,

ग्लोबल विलेज का नया दौर इसी सांस्कृतिक बुनियाद पर टिका है। लगभग सारे राजनीतिक दलों के विचार और दर्शन इन्हीं मुद्दों के इर्द-गिर्द घूम रहे हैं। इन मुद्दों ने दलों के वैचारिक फर्क-सिद्धान्त को मिटा दिया है। 1991 में नरसिंह राव की सरकार ने नई आर्थिक नीति लागू की। भारत के जीवन में यह बड़ा मोड़ था। तब वामपंथी, भजपाई इस नीति के खिलाफ खड़े हुए। पर वर्ष 1995 में विपक्ष के नेता की हैसियत से लालकृष्ण आडवाणी अमेरिका गए। वहाँ उन्होंने बयान दिया कि हमारी सरकार बनेगी, तो इस नई अर्थनीति को और तत्परता-चुस्ती से लागू करेंगे। संसद में या देश की धरती पर उदारीकरण-नई अर्थनीति का विरोध और अमेरिका की धरती पर समर्थन! उन्हीं दिनों ज्योति बसु-सोमनाथ चटर्जी की जोड़ी पूरी दुनिया में घूम-घूम कर बंगाल में विदेशी पूँजी निवेश के लिए एमओयू साइन कर रही थी, यह दल भी संसद में विदेशी पूँजी और नई अर्थनीति का विरोध कर रहा था, पर बंगाल के लिए दुनिया घूम कर उसी पूँजी को झोली फैला कर माँग रहा था। वह कथनी-करनी का फर्क, विचारहीन दौर की राजनीति का सबसे सबसे प्रमुख लक्षण था। उन्हीं दिनों कर्नाटक में चुनाव हो रहे थे। एचडी देवगौड़ा के नेतृत्व में जनता दल चुनाव लड़ रहा था। जनता दल ने नई अर्थनीति के उग्रविरोध को उस चुनाव का केन्द्रिया मुद्दा बनाया। जनता दल भारी बहुमत से जीता। चुनाव जीतते ही दूसरे दिन श्री देवगौड़ा सीआइआइ की बैठक में बोलने कलकत्ता पहुँच गए। वहाँ उन्होंने घोषणा की कि नई अर्थनीति को लागू करना मेरी सर्वोच्च प्राथमिकता है। चुनाव जीतने के 24 घंटों के अन्दर यह कलाबाजी। वैचारिक परिवर्तन। फिर वह उसी महीने दावोस गए। नयी अर्थनीति समझने।

इसके बाद केन्द्र में संयुक्त मोरचा-वाम मोरचा की सरकारें बनीं। एचडी देवगौड़ा और इन्द्र कुमार गुजराल क्रमशः प्रधानमन्त्री हुए। डब्ल्यूटीओ पर साइन करने से लेकर नई अर्थनीति को आगे बढ़ाने की हर सम्भव कोशिश दोनों प्रधानमन्त्रियों की सरकारों ने की। इसके बाद सत्ता में आया स्वदेशी का राग अलापनेवाला भाजपा गठबन्धन। नई अर्थनीति के बल पर 'इण्डिया शाइनिंग' गाते-गाते एनडीए सत्ताच्युत हो गया।

अब यूपीए की सरकार है। हाल में पेटेन्ट बिल वामपंथियों के सहयोग से पास हुआ है। जब एनडीए सत्ता में था, तब उसने यह बिल तैयार किया था। अब वह इसी पेटेन्ट के विरोध में है। यही इस दौर की राजनीति की खूबी है। सत्ता में रहते हुए कुछ और कहना, सत्ता के बाहर जाकर उसके ठीक विपरीत आचरण। चाहे नई अर्थनीति-उदारीकरण का सवाल हो या डब्ल्यूटीओ का या पेटेन्ट का या विदेशी पूँजी निवेश का। गुजरे 15 वर्षों में सारे दलों के चेहरे और चरित्र इन मुद्दों ने उजागर कर दिए हैं। सत्ता में रह कर इन मुद्दों का समर्थन, बाहर जाकर विरोध। अब बंगाल में बुद्धदेव भट्टाचार्य को बंगाल का 'देंग सियाओ पिंग' (चीन के मशहूर नेता, जिन्होंने

चीन को बाजार व्यवस्था की पटरी पर डाला) कहा जा रहा है। सवाल यह नहीं है कि ये नीतियाँ सही हैं या गलत, बल्कि कैसे सारे दल वैचारिक रूप से दरिद्र हो गए हैं। इन नीतियों के विकल्प में इन दलों की अपनी कोई नीति नहीं है। इसलिए लगभग सारे दल उदारीकरण, बाजार व्यवस्था और उपभोक्तावाद के दर्शन से संचालित हो रहे हैं। खूबी यह है कि सत्ता में जाते ही ये दल इन नीतियों का समर्थन करते हैं और बाहर होते ही विरोध। राजनीतिक दल, जनता से इस तरह खुलेआम दोहरा आचरण करें, झूठ बोलें। 20 वर्षों पहले की राजनीति में ऐसा नहीं था। यह दलों के वैचारिक चारित्रिक पतन का परिणाम है। इस दर्शन ने दो भारत गढ़ दिए हैं। जनवरी 2005 के *टाइम* पत्रिका ने भारत पर प्रकाशित अपने एक महत्वपूर्ण लेख में कहा कि अब भारत दो है। 35 फीसदी भारतीय गरीबी में बिलख रहे हैं और लगभग दस लाख अति समृद्ध भारतीय हैं। ये समृद्धि-भौतिकता का चरम भोग रहे हैं। इन्हें अपनी असली आमद और अपनी कुल सम्पदा किसी को बताने की परवाह नहीं है। गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले भारतीय प्रतिदिन एक डालर से कम कमाते हैं। लगातार अनुत्पादक खर्च बढ़ रहा है।

पर सामाजिक, आर्थिक विषमता के ऐसे सवाल या गैंगरीन बन चुके भ्रष्टाचार के सवाल अब न संसद में उठते हैं, न दलों के भीतर। क्योंकि विचारधारा, दर्शन और संस्कृति के स्तर पर लगभग सभी शासक दल मामूली फर्क के साथ एक जैसा ही बरताव कर रहे हैं।

इस स्थिति में सर्वोदय के भाष्यकार दादा धर्माधिकारी पुनः याद आते हैं। वह अक्सर कहा करते थे। संसार-सृष्टि जिस रूप में हमारे सामने हैं, उसे जानने-समझने की कोशिश दार्शनिक ने की। वैज्ञानिक ने प्रकृति के नियमों को ढूँढ़ा, परन्तु दुनिया को बदलने का काम, न तो दार्शनिक ने किया और न वैज्ञानिक ने। अर्थशास्त्री भी यह काम नहीं कर सके। जिन लोगों ने समाज-देश बदलने का काम हाथ में लिया है। वे न तो दार्शनिक हैं, न वैज्ञानिक, न अर्थशास्त्री।

इतिहास भरा पड़ा है कि कैसे विचारों, सिद्धान्तों, मुद्दों ने बहस, बदलाव, विरोध, क्रान्ति और युद्ध की पृष्ठभूमि तैयार किए हैं। देश-समाज की यथास्थिति को अच्छे या बुरे बदलाव के लिए, महान दार्शनिकों, चिन्तकों, क्रान्तिकारियों, द्रष्टाओं के विचारों-सिद्धान्तों ने जमीन तैयार की है। आइडियाज (विचार) ने सभ्यता, व्यवस्था और साम्राज्यों की चूलें हिला दी हैं। आज बर्बर युग, पत्थर युग से होते कृषि युग, औद्योगिक क्रान्ति के रास्ते सूचना क्रान्ति-ग्लोबल विलेज तक दुनिया पहुँची है, तो इस यात्रा में विचारों, वादों, मूल्यों का बड़ा योगदान रहा है।

पर ग्लोबल होती इस दुनिया के नए विचार और सिद्धान्त क्या हैं? किन उसूलों-विचारों, सिद्धान्तों के इर्द-गिर्द समूह-समाज, देश या लोग गोलबंद हो रहे हैं! किस विचार में वह ताकत-आकर्षण है, जिसके प्रभाव में करोड़ों लोग बेहतर भविष्य

बनाने के लिए निकल पड़े? फिलहाल आकर्षण का केन्द्र है, बाजारवाद और इसके चिन्तक, प्रबंधन के बड़े जानकार-भाष्यकार। बाजार के माध्यम से दुनिया की व्याख्या की नई कोशिश हो रही है। पर बाजार हमेशा मुनाफ़ा देखता है, और यह मनुष्य की भावनाओं के प्रति न्यूट्रल है, निरपेक्ष संवेदनहीन है। पर सच यही है कि बाजार एजेंडा तय कर रहा है। भारत के अनुभव को याद करें। 1991 के उदारीकरण के बाद सी.आई.आई., उद्योग फोरमों, चैम्बर ऑफ कॉमर्स के मंचों से प्रधानमंत्री, वित्तमंत्री, मुख्यमंत्री अन्य महत्त्वपूर्ण मंत्री नीतियों की घोषणाएँ करते हैं। लोकतंत्र से चुने गए और सरकार में बड़े पदों पर जनप्रतिनिधि के रूप में बैठे इन लोगों में स्पष्टी रहती है कि किस उद्योग मंच पर कौन पहुँच रहा है? 1970 तक उद्योग नीति-अर्थनीति 'गरीबों' को फोकस में रखकर बनती थी। संसद में इन नीतियों-पंचवर्षीय योजनाओं पर बहस होती थी। उन्हीं दिनों योजना आयोग के एक सदस्य प्रो. मिन्हास ने गरीबी रेखा से नीचे रहनेवालों की मान्य-स्वीकृत परिभाषा पर ही सवाल खड़ा कर दिया। उन दिनों की राजनीति में यह मुद्दा बड़ा गम्भीर और चर्चित हो गया। प्रधानमंत्री इंदिरा जी के लिए संकट पैदा करनेवाला सवाल। संसद से सड़क तक यह मुद्दा उठा। आज अर्थनीतियों की चर्चा सी.आई.आई. और ऐसे फोरमों पर होती है, कारपोरेट हाउसों के हित-अहित में, क्योंकि बाजार उनके हाथ में हैं। इस अफसाने में 'कामन मैन' (साधारण आदमी) कहाँ है?

इस बाजार दर्शन-व्यवस्था की वाहक हैं, बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ, मैकडोनाल्ड जैसे फूड चेन। दुनिया के 121 देशों में 30,000 मैकडोनाल्ड के रेस्टूरेंट हैं। साढ़े चार करोड़ ग्राहकों को रोज खिलाते हैं। ये रेस्टूरेंट 'अमेरिकन कंज्यूमर लाइफ स्टाइल' और ड्रीम बेचते हैं। इसका फ्लेवर (गंध) स्थानीय है। ग्लोबलाइजेशन की छतरी के नीचे लोकलाइजेशन। आत्मा अमेरिकी, बाहरी ढाँचा यानी इंप्लाई (काम करनेवाले) लोकल। अमेरिकी हैंबरगर, इटैलियन पिज्जा, फ्रेंच व्यंजनों के साथ कुछ-कुछ भारतीय व्यंजनों की गंध भी है। चीन में मैकडोनाल्ड का सबसे बड़ा रेस्टूरेंट है, 700 लोगों के एक साथ एक जगह बैठने की जगह 27 कार्टर हैं। जिस दिन 1992 में बीजिंग में मैकडोनाल्ड रेस्टूरेंट खुला, 40,000 चीनी आए। उन्होंने टिप्पणी की कि यहाँ आकर समता का बोध हुआ। फ्रांस की क्रान्ति से जो समता शब्द निकला, साम्यवादी चीन में उसका एहसास मैकडोनाल्ड जाकर चीनियों ने किया। माओ की क्रान्ति के पाँच दशक बाद। विचार अनुभूति और सीखने-सिखाने के नए केन्द्र हैं, आइडिया हाउस हैं, ऐसे केन्द्र। मैकडोनाल्ड का दावा है कि हम पारिवारिक मूल्य-संस्कार के बीज बोते हैं। 'गोल्डेन आर्चज ईस्ट' के लेखक कहते हैं कि पूर्वी एशिया के अनेक देशों में बच्चों-युवाओं ने 'जन्मदिन के उत्सव समारोह' की सीख मैकडोनाल्ड से ली। इन देशों के बच्चे यहाँ जन्मदिन नहीं मनाने पर अपने अभिभावकों से ही कुट्टी करते हैं। इन दुकानों पर लाइन लगाकर आप खरीद सकते हैं। इस तरह इनका दावा है कि कतारबद्ध होने का

अनुशासन सिखा कर हम 'लॉ एंड आर्डर' की संस्कृति मतबूत करते हैं। ग्लोबल दुनिया में 'यूनिटी इन डाइवर्सिटी' (अनेकता में एकता) का काम हम करते हैं, ऐसा इनका दावा है, शाकाहारी जैनी से लेकर घोर मांसाहारी, श्वेत, अश्वेत, यहूदी, ईसाई, हिन्दू, मुसलमान सब एक छत के नीचे, इसलिए मैकडोनाल्ड का नारा है *फ्रेंच फ्राइज फ्रिक्स ऑफ द वर्ल्ड, यूनाइट!* (दुनिया की तरंग मौज-मस्ती को एक जगह फ्राइकर अनुभव लेने के लिए एकजुट हों)।

कभी नारा लगा था 'दुनिया के गरीबों एक हो' इससे समाजवाद, साम्यवाद और समतापूर्ण समाज के सपने जगे, अब मैकडोनाल्ड जैसी सैकड़ों बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ, जिस बाजारवाद की छत्रछाया में सपने जगा रही हैं, उनसे कौन-सा वाद, विचार या सपने पैदा होंगे, इसकी प्रतीक्षा है।

## मानसिक पराधीनता

प्रेमचन्द\*

हम दैहिक पराधीनता से मुक्त होना तो चाहते हैं; पर मानसिक पराधीनता में अपने-आपको स्वेच्छा से जकड़ते जा रहे हैं। किसी राष्ट्र या जाति का सबसे बहुमूल्य अंग क्या है? उसकी भाषा, उसकी सभ्यता, उसके विचार, उसका कलचर। यही कलचर हिन्दू को हिन्दू, मुसलमान को मुसलमान और ईसाई को ईसाई बनाए हुए हैं। मुसलमान इसी कलचर की रक्षा के लिए हिन्दुओं से अलग रहना चाहता है, उसे भय है कि सम्मिश्रण से कहीं उसके कलचर का रूप ही विकृत न हो जाए। इसी तरह हिन्दू भी अपने कलचर की रक्षा करना चाहता है; लेकिन क्या हिन्दू और क्या मुसलमान, दोनों अपने कलचर की रक्षा की दुहाई देते हुए भी उसी कलचर का गला घोटने पर तुले हुए हैं।

कलचर (सभ्यता या परिष्कृति) एक व्यापक शब्द है। हमारे धार्मिक विचार, हमारी सामाजिक रूढ़ियाँ, हमारे राजनैतिक सिद्धान्त, हमारी भाषा और साहित्य, हमारा रहन-सहन, हमारे आचार-व्यवहार, सब हमारे कलचर के अंग हैं; पर आज हम कितनी बेदर्दी से उसी कलचर की जड़ काट रहे हैं। पश्चिमवालों को शक्तिशाली देखकर हम इन भ्रम में पड़ गए हैं, कि हममें सिर से पाँव तक दोष ही दोष हैं, और उनमें सिर से पाँव तक गुण ही गुण। इस अन्धभक्ति में हमें उनके दोष भी गुण मालूम होते हैं और अपने गुण भी दोष। भाषा ही को ले लीजिए। आज अंग्रेजी हमारे सभ्य-समाज की व्यावहारिक भाषा बनी हुई है। सरकारी भाषा तो वह है ही, दफ्तरों में तो हमें अंग्रेजी में काम करना ही पड़ता है; पर उस भाषा की सत्ता के हम ऐसे भक्त हो गए हैं कि निजी चिट्ठियों में, घर की बातचीत में भी उसी भाषा का आश्रय लेते हैं। स्त्री पुरुष को अंग्रेजी में पत्र लिखती है, पिता पुत्र को अंग्रेजी में पत्र लिखता है। दो मित्र मिलते हैं, तो अंग्रेजी में वार्तालाप करते हैं, कोई सभा होती है, तो अंग्रेजी में। डायरी अंग्रेजी में लिखी जाती है। वाह! क्या भाषा है! क्या लोच है! कितनी मार्मिकता है, विचारों को व्यंजित करने की कितनी शक्ति, शब्द-भंडार कितना विशाल, साहित्य कितना बहुमूल्य, कितना परिष्कृत, कविता कितनी मर्मस्पर्शिणी, गद्य कितना अर्थबोधक!

\* हिन्दी के महान उपन्यासकार

जिसे देखो अंग्रेजी जबान पर लट्टू, उसके नाम पर कुर्बान है। यहाँ तक कि हमारी योग्यता और विद्वत्ता की यही एक परख हो गई है, कि हम अंग्रेजी बोलने या लिखने में कितने कुशल हैं। आठवें क्लास से अंग्रेजी के मुहाबिरों की रटन शुरू हो जाती है, पर्यायों के सूक्ष्म अर्थभेद पर विचार होने लगता है, अपनी अंग्रेजी वक्तृता में अंग्रेजों का ऐक्सेंट और उच्चारण कैसे लाएँ, इस प्रयत्न में जान खपा दी जाती है। अगर किसी स्वर का उच्चारण अंग्रेजों से उनके मौखिक गठन के दोषों के कारण नहीं होता, तो हम भी अपने में वही बात पैदा करेंगे। आत तक 'जेम' जैसे साधारण शब्द का भी ठीक उच्चारण जो अंग्रेजों को भी जँचेबहुत कम लोग कर सकते हैं और हमारी यह मनोवृत्ति राष्ट्रीय भावों के साथ-ही-साथ बढ़ती जाती है। यहाँ तक कि अंग्रेजी ही पठित-समाज की भाषा बन गई है। अपनी भाषा में बातचीत करते समय कभी-कभी एकाध अंग्रेजी शब्द आ जाने को तो हम मुआफी के काबिल समझते हैं; लेकिन दुःख तो यह है, कि ऐसे सज्जनों की भी कमी नहीं है, जो बहुत थोड़ी-सी अंग्रेजी जानकर भी अंग्रेजी ही में अपनी योग्यता का प्रदर्शन करते हैं। अंग्रेज स्वप्न में भी किसी अंग्रेज से गैर अंग्रेजी भाषा में न बोलेगा; मगर यहाँ हम आपस में ही अंग्रेजी बोलकर अपनी मानसिक दासता का ढिंढोरा पीटते हैं। मैं उस मनोवृत्ति की कल्पना भी नहीं कर सकता, जो एक ही भाषा-भाषियों को अंग्रेजी में बातें करने की प्रेरणा करती है। किसी मदरासी, बंगाली या चीनी से तो अंग्रेजी में बातें करने का कोई अर्थ हो सकता है। उनसे बातें करनी जरूरी हैं और इस वक्त और कोई ऐसी भारतीय भाषा नहीं, जिसका सभी प्रांतवालों का एक-सा ज्ञान हो; मगर एक ही प्रांत के रहनेवाले, एक ही भाषा के बोलनेवाले, क्यों आपस में अंग्रेजी बोलें, क्यों अंग्रेजी में पत्र लिखें, क्यों 'प्रणाम' या 'नमस्कार', या 'वंदे' या 'नमस्ते' या 'तस्लीम' करने के बदले 'मार्निंग-मार्निंग' कहें, यह मेरी समझ में नहीं आता। क्यों 'हल्लो' ही मुँह से निकले, मैं इसकी कल्पना नहीं कर सकता। संसार में ऐसे प्राणियों की कमी नहीं है, जो मँगनी की चीजों का व्यवहार करके भी सिर उठाकर चलते हैं। उन्हें यही खुशी है, कि लोग मुझे इन चीजों का स्वामी समझते होंगे। अंग्रेजी का व्यवहार करनेवालों की मनोवृत्ति भी कुछ इसी तरह की होती है। या तो उनका अभिप्राय यह होता है, कि देखें हम दोनों में कौन अच्छी अंग्रेजी बोलता है, या यह कि देखो, हम जितनी सफाई से अंग्रेजी बोलते हैं, तुममें वह सफाई नहीं है। और इसका परिणाम यह होता है कि अच्छी अंग्रेजी लिखनी और बोलनी तो आ जाती है; पर अपनी भाषा भूल जाती है, या हेय और तुच्छ समझकर भुला दी जाती है। यह हमारे शिक्षित-समुदाय की लज्जाजनक ही नहीं, शोकजनक मानसिक दासता है।

फ्रांसीसी कवि फ्रेंच में कविता करता है, जर्मन, जर्मन में, रूसी रशियन में, कम-से-कम जिन रचनाओं पर उस गर्व होता है, वह अपनी ही भाषा में करता है; लेकिन हमारे यहाँ के सारे कवि और सारे लेखक अंग्रेजी में लिखने लगे, अगर केवल

कोई प्रकाशक उनकी रचनाओं को छापने पर तैयार हो जाए! जिन्हें प्रकाशक मिल जाते हैं, वह चूकते भी नहीं, चाहे अंग्रेज आलोचक उनका मजाक ही न उड़ावें; मगर वह खुश हैं।

हम जानते हैं, कि अंग्रेजी भाषा प्रौढ़ है, हरेक प्रकार के भावों को आसानी से जाहिर कर सकती है और भारतीय भाषाओं में अभी वह बात नहीं आई; लेकिन जब वही लोग, जिन पर भाषा के निर्माण और विकास का दायित्व है, दूसरी भाषा के उपासक हो जावें, तो उनकी अपनी भाषा का भविष्य भी तो शून्य हो जाता है। फिर क्या विदेशी साहित्य की नींव पर आप भारतीय राष्ट्रियता की दीवार खड़ी करेंगे? यह हिमाकत है। आज हमारा पठित-समाज साधारण जनता से पृथक् हो गया है। उसका रहन-सहन, उसकी बोल-चाल, उसकी वेश-भूषा, सभी उसे साधारण समाज से अलग कर रहे हैं। शायद वह अपने दिल में फूला नहीं समाता, कि हम कितने विशिष्ट हैं। शायद वह जनता को नीच और गँवार समझता है; लेकिन वह खुद जनता की नजरों से गिर गया है। जनता उससे प्रभावित नहीं होती, उसे 'किरंटा' या 'बिगडैल', या 'साहब बहादुर' कहकर उसका बहिष्कार करती है और आज खुदा न ख्वासता, वह किसी अंग्रेज के हाथों पिट रहा हो, तो लोग उसकी दुर्गति का मजा उठावेंगे, कोई उसके पास भी न फटकेगा। जरा इस गुलामी को देखिए, कि हमारे विद्यालयों में हिन्दी या उर्दू भी अंग्रेजी द्वारा पढ़ाई जाती है। अगर बेचारा हिन्दी-प्रोफेसर अंग्रेजी में लेक्चर न दे, तो छात्र उसे नालायक समझते हैं। आदमी के मुख में कलंक लग जाए तो वह शर्माता है, उस कलंक को छिपाता है, कम-से-कम उस पर गर्व नहीं करता; पर हम अपनी दासता के कलंक को दिखाते फिरते हैं, उसकी नुमाइश करते हैं, उस पर अभिमान करते हैं, मानों वह नेकनामी का तमगा हो, या हमारी कीर्ति की ध्वजा। वाह री भारतीय दासता, तेरी बलिहारी है!

भाषा को छोड़िए, वेश-भूषा पर आइए। आप उन साहब बहादुर को देख रहे हैं, जो हैट-कैट लगाए, गरूर से इधर-उधर देखते चले जा रहे हैं। यह हमारे हिन्दुस्तानी योरोपियन हैं। रास्ते से हट जाओ, साहब बहादुर आते हैं! साहब को सलाम करो, आप पूरे साहब बहादुर हैं! मुझे तो आप सिर से पाँव तक गुलाम नजर आते हैं, जो अपनी गुलामी का उसी बेशर्मी से प्रदर्शन कर रहे हैं, जैसे कोई वेश्या अपने हाव-भाव का। आपमें आत्मबल अवश्य है, बड़े ऊँचे दर्जे का आत्मगौरव, आप लोक-मत को ठुकरा देते हैं, किसी के नाक-भौं सिकोड़ने की परवा नहीं करते, जो अपने स्वार्थ के लिए उपयोगी या अपनी मनोतुष्टि के लिए वांछनीय समझते हैं, वह अबाध्य रूप से करते हैं। क्यों लोकमत का आदर करें! लोकमत के गुलाम नहीं; लेकिन उसी आत्मगौरव के पुतले से कहिए कि जरा शाम को बिना फेल्टकैप लगाए किसी अंग्रेजी-क्लब में चला जाए, तो उसके हाथ-पाँव फूल जाएँगे, खून ठण्डा हो जाएगा, चेहरा फक हो जाएगा! क्यों? इसलिए कि उसका आत्म-गौरव केवल अपने भाइयों पर

रोब जमाने के लिए है, उसमें सार का नाम नहीं। वह जिस समाज में मिलना चाहता है, उसकी छोटी-से-छोटी रूढ़ियों की भी अवहेलना नहीं कर सकता। जनता को वह समझता है, हमारा कर ही क्या लेगी, यह खुश रहे तो क्या, और नाराज रहे तो क्या, यह हमारा कुछ बना-बिगाड़ नहीं सकती। जिनसे कुछ बनने-बिगड़ने का भय है उनके सामने वह भीगी बिल्ली बन जाता है। अपने एक मित्र साहब बहादुर से मैंने पूछातुम इस ठाठ से क्यों रहते हो, तो बड़े दार्शनिक भाव से बोलेइसलिए कि अंग्रेजों से मिलने जाता हूँ, तो जूते बाहर नहीं उतरने पड़ते जो लोग अचकन और टोपी पहनकर जाते हैं, उन्हें जूते उतार देने पड़ते हैं। मैं कहता हूँ, जो स्वार्थ लेकर अंग्रेजों से मिलने नहीं जाते, वह अचकन नहीं, मिर्जई भी पहने हों, तो उन्हें जूते उतारने की जरूरत नहीं और जो स्वार्थ लेकर जाते हैं, वह किसी वेश में हों, उनकी आत्मा दबी रहती है। ऐसे प्राणियों की दशा उस आदमी की-सी है, जो अपने कपड़े पर एक दाग को छिपाने के लिए सारा कपड़ा ही काला रंग ले। अगर स्वार्थ मजबूर कर रहा हो, तो मेरे विचार में तो जूते उतार देना इससे कहीं अच्छा है, कि हम उस अपमान से बचने के लिए बेहयाई का एक अपराध और अपने सिर पर लें। यह मत समझो, कि अंग्रेज तुम्हारा कोट-पैट देखकर तुम्हारा ज्यादा आदर करता है और अगर ऐसा हो भी, तो अपना वेश छोड़कर उस आदर को लेना, एक प्याले शोरबे के लिए अपने जन्म-सिद्ध गौरव को बेचना है। एक दूसरे मित्र से यही प्रश्न किया, तो बोलेइससे सफर करने में बड़ा सुभीता होता है, जनता समझती है यह कोई साहब हैं, मेरे डब्बे में नहीं आती। एक और साहब ने कहाअंग्रेजी कपड़े पहनने से देह में बड़ी चुस्ती और फुरती आ जाती है। गरज, लोग तरह-तरह की दलीलों से आपका समाधान कर देंगे। मैं पूछता हूँक्यों साहब, क्या सारी चुस्ती और फुरती अंग्रेजी कपड़ों में ही है? क्या यह कोई तिलिस्माती चीज है, कि बदन पर आई और आपकी देह में स्फूर्ति दौड़ी! यह दलीलें लगों और लचर हैं। हाँ, इस तर्क में अवश्य सार है, कि जब सारा-संसार यूरोपीय वेश के पीछे जा रहा है, तो आप उससे अलग कैसे जा सकते हैं। दूसरी दलील यह हो सकती है, कि हमारा कोई जातीय परिधान भी तो नहीं है। भिन्न-भिन्न प्रान्तीय परिधानों की अपेक्षा तो एक सावर्देशिक यूरोपीय परिधान का होना कहीं अच्छा है। बेशक यह टेढ़ा प्रश्न है। यह बात भी विचारणीय है कि अन्य देशों में अमीर-गरीब सबका पहनावा एक ही है, चाहे उसके कपड़े में कितना ही अन्तर हो। आपके यहाँ किसान मिर्जई या नीमआस्तीन या कुर्ता-धोती पहनता है, कहीं शलवार है, कहीं पगड़ी, कहीं जाँघिया। पहले एक जातीय ठाठ की सृष्टि तो कर लीजिए, फिर विलायती पहनावे पर आक्षेप कीजिएगा। भाषा ही की भाँति एक जातीय पहनावा भी बरसों के बाद कहीं जाकर आविर्भूत होता है, किसी संस्था या नीति-द्वारा उसकी सृष्टि नहीं की जा सकती। अभी भारत को एक सावर्देशिक परिधान के लिए बहुत दिनों तक इन्तजार करना पड़ेगा; मगर जब तक वह समय नहीं आता, तब तक

के लिए हमारे विचार में इस नीति को सामने रखना चाहिए कि यथासाध्य जनरुचि का सम्मान किया जाए। अगर किसी प्रान्त में जनता कोट पहनती है, तो वहाँ के लिए कोट-पतलून ही उपयुक्त है। इसी भाँति जिन प्रान्तों में साधारण जनता कुरता और धोती पहनती है, वहाँ कुरता और धोती को ही जातीय परिधान के पद पर सम्मानित करना चाहिए। अभिप्राय केवल यह है, कि शिक्षित-समाज केवल अपनी विशिष्टता या प्रभुत्व जताने के लिए ऐसे बेश-भूषा का व्यवहार न करे जिसमें विदेशीपन की झलक आती हो। हो सकता है, कि कुछ लोगों को अंग्रेजी वेष में रहने पर भी जरा अभिमान या स्वार्थ-सिद्ध की भावना न हो; पर दुर्भाग्यवश यह विदेशी वेश जनता की आँखों में खटकता है और इसे धारण करनेवाले चाहे देवता ही क्यों न हों, वे स्वजाति के द्रोही और शासक जाति के अनन्य भक्त के रूप में नजर आते हैं। सम्भव है, स्वाधीन हो जाने पर यही हमारा स्वजातीय वेश हो जाए; लेकिन तब इसमें वह कुसंस्कार न रहेंगे, जिन्होंने इस वक्त इसे इतना अवहेलनीय बना रखा है। जरा सोचिए, क्या यह एक पढ़े-लिखे व्यक्ति को शोभा देता है, कि वह अपना रहन-सहन ऐसा बना ले, कि जनता उसे श्रद्धा की दृष्टि से देखने के बदले घृणा या भय की दृष्टि से देखे। किसी समय जनरुचि को पद-दलित करने का नतीजा बुरा भी हो सकता है, और यह तो स्पष्ट ही है, कि अगर जनता के हाथों में प्रभुत्व होता, तो बहुत से अंग्रेजी वेश के प्रेमी यह वेश धारण करने के पहले ज्यादा विचार से काम लेना आवश्यक समझते; मगर हमारी यह मनोवृत्ति भाषा और वेश तक ही रहती, तो अधिक चिन्ता की बात न थी। इसने हमारे कितने और सामाजिक विचारों पर भी अपना प्रभुत्व जमा लिया है और अभी से रोक-थाम न की गई, तो एक दिन हमारी जातीय संस्कृति ही का लोप हो जाएगा। यह एक साधारण-सी बात है कि पराधीन जाति को अपने में सारी बुराइयाँ और राज्य करनेवाली जाति में भलाइयाँ नजर आती हैं। हमारी सभ्यता कहती है अपनी जरूरतों को मत बढ़ाओं, ताकि तुम्हारी जात से कुटुम्ब और परिवार का भी कुछ उपकार हो। पश्चिमी सभ्यता का आदर्श है अपनी जरूरतों को खूब बढ़ाओ, चाहे उसके लिए दूसरों की जेब ही क्यों न काटनी पड़े। अपने ही लिए जिओ और अपने ही लिए मरो। हमारी सभ्यता कृषि-प्रधान थी, हम गाँवों में रहते थे, जहाँ अपने आत्मीयजनों का संसर्ग बहुत-सी बुराइयों से हमारी रक्षा करता था। पश्चिमी सभ्यता व्यवसाय-प्रधान है और बड़े-बड़े नगरों का निर्माण करती है, जहाँ हम सारे बंधनों से मुक्त होकर दुराचरण में पड़ जाते हैं। हमारी सभ्यता में सम्मिलित-कुटुम्ब एक प्रधान अंग था। पश्चिमी सभ्यता में परिवार का अर्थ हैकेवल स्त्री और पुरुष। दोनों में बुराइयाँ और भलाइयाँ, दोनों ही हैं; पर जहाँ एक में सेवा और त्याग प्रधान है, वहाँ दूसरे में स्वार्थ और संकीर्णता। हमारी सभ्यता में नम्रता का बड़ा महत्त्व था, पश्चिमी सभ्यता में आत्म-प्रशंसा को वही स्थान प्राप्त है। अपने को खूब सराहो, अपने मुँह खूब मियाँ-मिट्टू बनो। हमारी सभ्यता में धन का स्थान गौण था, विद्या और आचरण से

आदर मिलता था। पश्चिमी सभ्यता में धन ही मुख्य वस्तु है। हम भी धन कमाते थे; पर दया के साथ। पश्चिम भी धन कमाता है; पर दया का नाम नहीं। हमारी सभ्यता का आधार धर्म था, पश्चिमी सभ्यता का आधार संघर्ष है।

लेकिन यहाँ हम अपने सद्गुणों की प्रशंसा नहीं करने बैठे हैं। हमारे कहने का तात्पर्य केवल यह है, कि हमें हरेक पश्चिमी चीज के पीछे आँखें बन्द करके चलने की जो प्रवृत्ति हो रही है, वह केवल हमारी मानसिक पराजय के कारण। हमारी सभ्यता में भी रोग थे; मगर उसकी दवा यूरोपीय सभ्यता की अन्धभक्ति नहीं हैं। उसकी दवा हमें अपनी ही संस्कृति में खोजनी थी। यूरोपीय सभ्यता की नकल करके हमें अपने यहाँ भी उन्हीं दवाओं का व्यवहार करना पड़ेगा, जो यूरोप कर रहा है। यूरोप पथ-भ्रष्ट है, उसे अपने लक्ष्य का ज्ञान नहीं और, आज यूरोप के विचारवान् लोग कह रहे हैं, कि यह संस्कृति अब विध्वंस के गर्त में जानेवाली है। क्या हम भी उन्हीं बुराइयों की नकल करके अपनी संस्कृति को भी विध्वंस के गर्त में ढकेलने की तैयारी करें? यह समझ लीजिए, कि यह राजनीतिक परिस्थिति नहीं रहेगी; पर इस परिस्थिति में हमने अपने अस्तित्व को खो दिया, अपने धर्म की सत्ता खो दी, अपनी संस्कृति को खो बैठे, तो हमारा अंत हो जाएगा।

## चक्कियों का राष्ट्रीयकरण

शंकर पुणतांबेकर\*

बड़े राजा ने कहा आज मुझे दो-तीन छीकें आर्यीं।

बड़े राजा के अंदर तीस-पैंतीस छोटे राजा थे, उन्होंने सुना तो उनमें से कई कह उठे, छीकें तो आज मुझे भी आर्यीं।

नहीं आर्यी थीं, तब भी उन्होंने ऐसा कहा, जताने के लिए कि हे राजा हम तुम्हारे सच्चे पिछलग्गू हैं! तुम छीकते हो तो हम भी छीकते हैं, तुम थूकते हो तो हम भी थूकते हैं, तुम भौंकते हो तो हम भी भौंकते हैं।

ये छीकें क्यों आर्यीं? बड़े राजा ने पूछा।

यह तो बड़ा गंभीर मामला है! इसकी छानबीन होनी चाहिए। कैबिनेट स्तर के एक राजा ने कहा।

एक जाँच-कमीशन नियुक्त किया जाए। राजा स्तर के एक छोटे राजा ने कहा।

और उसी दिन शाम को कैबिनेट मीटिंग हुई। बड़े राजा को छीक क्यों आती है- इस मुद्दे को लेकर कोई तीन घण्टे चर्चा हुई। इन्हीं दिनों राज्य में कई जगह अशुद्ध पानी के कारण गैस्ट्रो की बीमारी लोगों की जान ले रही थी। एक मंत्री ने इस मुद्दे को भी उपस्थित किया। बड़े राजा ने कहा, छीक की मीटिंग में गैस्ट्रो को मत लाओ। गैस्ट्रो का हम अगली मीटिंग में विचार करेंगे। यह कहते हुए राजा को इस बात का ध्यान नहीं रहा कि वह दूसरे ही दिन विदेश जा रहा है, तीन हफ्तों के बाद लौटेगा। वैसे वह जनता का पूरा-पूरा हितैषी था। विदेश जाते हुए वह लोगों को कहता जायेगा, मैं विदेश से लौटता हूँ तब तक गैस्ट्रो, महंगाई, काला-बाजारी, दंगों आदि से बचे रहना। मरना नहीं।

छीक पर तीन घण्टे की लंबी चर्चा के बाद यह तय हुआ कि पीसनेवाली चक्कियों का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाय। प्राइवेट सेक्टर की चक्कियाँ बड़ी खतरनाक हैं, इनसे जो आटे के पिसे हुए कण उड़ते हैं वे ही छीक पैदा करते हैं। चक्कियों के राष्ट्रीयकरण से इन पिसे कणों पर नियंत्रण रखा जा सकता है।

\* लेखक हिन्दी के एक जाने माने व्यंग्यकार हैं। पता : 2 मायादेवी नगर, जलगाँव-425 002

तय यह हुआ कि चक्कियों के राष्ट्रीयकरण की नीति को जनता के हित में बताया जाय। बताया जाये कि प्राइवेट सेक्टर में चक्कियाँ ठीक से नहीं पीसती हैं। विशेष रूप से गरीबों को इन चक्कियों से कम लाभ पहुँचता है जो अब राष्ट्रीयकरण से उन्हीं को अधिक पहुँचेगा।

अब इस राष्ट्रीयकरण की नीति के पीछे छोटे राजाओं की शह थी। शह राजा को नहीं जनता को। इन चक्कियों पर अफसर तैनात होंगे...प्रोबेशनरी अफसर। इन जगहों पर छोटे राजा अपने नाते-रिश्ते के लोगों को चिपका सकेंगे।

चक्कियों का जनता के हित में होने की घोषणा के साथ राष्ट्रीयकरण हो गया। जनता को आरंभ में अच्छा लगा कि एक खास वर्ग के पूँजीपति खत्म हो गये हैं। लेकिन शीघ्र ही उसके “जनता परिणाम” के स्थान पर “दरबारी परिणाम” सामने आने लगे। चक्की पर लंबा क्यू दिखायी देने लगा। चाँदनी चौक की चक्की पर चाँदनी चौक से राजघाट तक अथवा पहाड़गंज की चक्की पर पहाड़गंज से दिल्ली गेट तक।

सोमवार का डिब्बा पिसकर सोमवार को ही मिलता। किसी को सात दिन के बाद के सोमवार को, तो किसी को चौदह दिन के बाद के सोमवार को। लेकिन सरकार ठाट से कहती कि जनता का उस दिन का काम उसी दिन निबटाया जाता है।

पिसाने को जितने वजन का दिया है उतने ही वजन का पिसानेवाले के हाथ पड़ेगा इसका भरोसा नहीं रहा। गेहूँ पीसने को दिया है तो जरूरी नहीं कि गेहूँ का ही आटा हाथ आयेगा। वह ज्वार मिला हो सकता है अथवा पूरा ही ज्वार का हो सकता है। यदि पूरा-पूरा गेहूँ का ही है तो वह सड़े गेहूँ का भी हो सकता है।

पिसाई की किसी की भी दरखास्तें बिना कारण दिखाये नामंजूर कर दी जातीं। मंजूरी में जात-पाँत, वंश या दल को देखा जाता।

चक्की बंद रहना आम बात हो गयी। आज इतवार है, आज टोपी जंयती है, आज लंगोटी पुण्यतिथि है, आज पाजामा दिन है, आज बिजली नहीं है, आज पाट टँक रहे हैं, आज पट्टा टूट गया है, आज पूरी चक्की बीमार है, आज इंजिनियर हड़ताल पर हैं, आज मजदूर हड़ताल पर हैं, आदि कारणों से चक्की बंद रहना राष्ट्रीय बात हो गयी।

चक्की के राष्ट्रीयकरण से एक नयी राष्ट्रीय संस्कृति का निर्माण हुआ।

इस राष्ट्रीय संस्कृति में बंगले या कोठी का आदमी क्यू में नहीं लगता। उसका फोन से ही काम हो जाता है। बंगले या कोठी का अनाज फोन से पिसने लगा। झोंपड़ी और मकान के लोग हफ्तों क्यू में लगे हैं जब कि बंगला-कोठी के कनस्तर ही नहीं बोरे भी मिनटों में चक्की पा जाते हैं।

इस राष्ट्रीय संस्कृति में कालाबाजारी का जन्म हुआ। पहले पिसे हुए की थैली सामान्य दाम में प्राप्त हो जाती थी, पर अब वह दुगने-तिगने दामों में बिकने लगी।



इससे वह आम आदमी के पहुँच के बाहर की तो खास आदमी के प्रतिष्ठा की ऊँचाई की चीज बन गयी।

इस राष्ट्रीय संस्कृति में भ्रष्टाचार सामान्य बन गया। चक्की अफसर को रिश्वत दो और अपना अनाज जब चाहो पिसवा लो। चक्कियों के राष्ट्रीयकरण के कारण हाथ भट्टियों की तरह हाथ चक्कियाँ चलपड़ी जिनके “हफ्तों” से पुलिस मंत्री-स्तर को प्राप्त हुई।

इस राष्ट्रीय संस्कृति में पुराना चक्कीपति तो खत्म हो गया, लेकिन इसने एक नये चक्कीपति को जन्म दिया, जिसे चक्की-अफसर कहते हैं। पुराना चक्कीपति अनाज ही पीसता था, नया चक्कीपति आचार-विचार-सदाचार सभी को पीसने लगा। राष्ट्रीयकरण से जन्मी राष्ट्रीय संस्कृति की यह महान देन है। वह पूरा-पूरा ऐसा अफसर बन बैठा कि उसमें आदमी का अंश जरा भी नहीं रहा। इसीलिए वह आदमी का नहीं पैसे का पहले पीसने लगा; बल्कि वह पैसे के लिए आदमी को ही पीसने लगा।

इस राष्ट्रीय संस्कृति में पहले जहाँ बिजली के दाम और चक्की के रखरखाव के खर्च के अनुरूप पिसाई के दाम बढ़ते थे, अब वे अफसर के दाम और सरकार के रखरखाव के खर्च के अनुरूप बढ़ने लगे। पहले एक नौकर से काम चल जाता था अब दस-दस नौकर से नहीं चल पाता।

इस राष्ट्रीय संस्कृति में पहले जहाँ जरूरत होती थी वहीं चक्की रोपी जाती थी, अब जहाँ जरूरत नहीं है वहाँ भी रोपी जाती है, क्योंकि राजाओं और अफसरों को अपने बेटों-रिस्तेवालों को रोपना होता है।

इस राष्ट्रीय संस्कृति में नीचे से लेकर ऊपर तक सरकारी आदमी हाड़-चाम का आदमी नहीं रहा, वह आटे का आदमी बन गया, चपरासी सो आटे का, बाबू सो आटे का, अफसर सो आटे का, छोटा राजा सो आटे का, बड़ा राजा सो आटे का। इन चक्कियों का राष्ट्रीयकरण क्या हुआ सरकार का आटीकरण हो गया।

चलते-चलते एक-दो बातें और।

पहले चक्की से उड़ने वाले आटे की कटौती सेर के पीछे छटाँक थी जो बढ़ते-बढ़ते इतनी बढ़ गयी कि ग्राहक पहले जहाँ सेर में पंद्रह छटाँक घर ले जाता वहाँ वह अब सेर में एक छटाँक ही ले जाता है। पहले चक्की नफा खूब देती थी, अब वह घाटा खूब देती है।

## विकास के निमित्त विज्ञान

डॉ. राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव\*

जुलाई, 1999 में हंगरी की राजधानी बुडापेस्ट में विश्व विज्ञान सम्मेलन का आयोजन किया गया था। इस सम्मेलन की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में यह बात उभर कर आई थी कि दुनिया के सभी राजनीतिक नेताओं का ध्यान इस ओर आकर्षित किया जाए कि वे सामाजिक समृद्धि और आर्थिक विकास के निमित्त विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के महत्व को भली-भाँति समझें। इस विचार का विकसित तथा विकासशील राष्ट्रों की राजनीतिक गतिविधियों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा और इस दिशा में कई प्रयत्न भी प्रारम्भ किए गए।

परन्तु दुर्भाग्य यह रहा कि बहुत से कारणों से ऐसी गतिविधियाँ बहुत आगे नहीं बढ़ पाई। बहुत से विकासशील देश विकसित राष्ट्रों से प्राप्त होनेवाले अनुदान तथा ऋण से अपने वहाँ गरीबी उन्मूलन कार्य चला रहे थे अतः इस अनुदाननीति के भरोसे रहने के कारण यहाँ विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का विकास हाशिये पर चला गया। राजनेताओं का यह व्यवहार विकासशील देशों में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अभिरुचि कम करने का कारक सिद्ध हुआ जबकि विश्व विज्ञान सम्मेलन में इन देशों ने अपने-अपने विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्री तथा वित्त मंत्री इत्यादि को भी सम्मिलित होने के लिए भेजा था।

इधर सन् 2004 में विश्व बैंक तथा संयुक्त राष्ट्र जैसी राजनीतिक संस्थाओं तथा ब्रिटेन जैसे कई विकसित देशों की सरकारों के द्वारा विकास के निमित्त जो कार्य किए गए उन्होंने यह आशा बंधाई है कि आनेवाले वर्षों में इस दिशा में आशाजनक परिणाम प्राप्त किए जा सकेंगे। यहाँ यह रेखांकित करना समीचीन होगा कि भारत सरकार ने भी सन् 2004 को ‘वैज्ञानिक जागरूकता वर्ष’ के रूप में मनाया जिसमें आम जन तक विज्ञान की नवीन उपलब्धियों की जानकारी पहुँचाने का काम विभिन्न माध्यमों से किया गया। सम्भवतः अब वह समय आ गया है जब विश्व स्तर पर

\* सम्पर्क : डॉ. राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव, पूर्व अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग (भारत सरकार) 11, वनस्थली, कैनाल रोड, बल्लुपुर, देहरादून-248001  
e-mail : raksrivastava@rediffmail.com

विभिन्न राष्ट्रों को मिलकर विकास के कुछ ऐसे ठोस प्रस्ताव तैयार करने होंगे जिनकी मदद से विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की उपलब्धियों तथा उपादानों को सीधे-सीधे सामाजिक विकास से जोड़ा जा सके तथा उन्हें विकास के एजेंडा में सम्मिलित कर नई उपलब्धियाँ हासिल की जा सकें। इसके लिए न केवल सन् 2005 बल्कि आनेवाले कुछ वर्षों में सुनियोजित प्रयास किए जाने अति आवश्यक हैं।

अगर इस दिशा में प्रयास करना है तो हमारे सामने कई नई चुनौतियाँ भी होंगी। हमें विगत में किए गए अपने कार्यों की समीक्षा करनी होगी तथा उन सभी कमियों को दूर करना होगा जिनके कारण हम विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी को विकास के निमित्त आज भी उतना कारगर नहीं बना सके हैं जितना कि होना चाहिए। समाज के साथ जुड़ी हुई तमाम समस्याओं के समाधान और आर्थिक उन्नयन के लिए हमें यह बराबर ध्यान रखना होगा कि विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी को एक ईमानदार राजनीतिक इच्छाशक्ति के साथ सभी स्तरों पर लागू किया जाए। ऐसी नीतियाँ बनाई जाएँ जिनसे विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी विकास के निमित्त एक महत्वपूर्ण कारक सिद्ध हों। हमें विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी को समाज की हर इकाई तक ले जाना है तथा छोटे-छोटे सामुदायिक कार्यक्रमों के माध्यम से स्थानीय लोगों की क्षमता को इतना बढ़ाना है कि वे अपनी जरूरतों के मुताबिक विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का न केवल उपयोग कर सकें बल्कि आधुनिक ज्ञान के सहारे अपने सामाजिक और आर्थिक विकास हेतु कुछ ऐसे जुगाड़ भी कर सकें जो उनके भविष्य को स्वस्थ और समृद्ध बनाने के साथ-साथ उनमें वैज्ञानिक जागरूकता की चमक भी पैदा कर सकें। भारत में चेन्नई स्थित एम. एस. स्वामीनाथन रिसर्च फाउंडेशन द्वारा उड़ीसा, आंध्र तथा अन्य तटीय प्रदेशों में किए जा रहे कार्यों से शिक्षा ली जा सकती है।

26 दिसम्बर 2004 को दक्षिण-पूर्वी एशिया के विभिन्न देशों के तटीय इलाकों में सुनामी के कारण जो जानमाल की क्षति हुई है वह हमें यह शिक्षा देती है कि इन क्षेत्रों में आधुनिक विज्ञान और जन चेतना की कितनी कमी रही है। इन क्षेत्रों में सुनामी सम्बन्धी चेतावनी प्रणाली का न होना तथा वैज्ञानिक जगत तथा प्रशासन के बीच पसरी लापरवाही तथा जागरूकता की कमी ने हमें यह सोचने के लिए विवश कर दिया कि संचार माध्यमों के द्वारा किस प्रकार लोगों को चेतावनी दी जा सकती है और इसमें कहाँ-कहाँ पर चूक हुई है। इतनी भयंकर प्राकृतिक आपदा के बीच राहत कार्य करना अपने आप में बहुत बड़ी समस्या बन गई। लोगों में जागरूकता न होने के कारण अफरा-तफरी का माहौल रहा। आज जब इन क्षेत्रों में लोग अपने जीवन को फिर से व्यवस्थित करने का प्रयास कर रहे हैं तब वहाँ आधुनिक विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। विभिन्न क्षेत्रों में अर्जित किए गए ज्ञान तथा विभिन्न उपादानों के माध्यम से हम इन क्षेत्रों की आपदाग्रस्त जनता के बीच उनके संघर्ष को कमतर करने की भूमिका अदाकर सकते हैं। भूकंप, सुनामी, चक्रवात

के बीच अपनी जिन्दगी गुजार रहे करोड़ों लोगों के सामने पृथ्वी के वातावरण के गर्माने के दुष्प्रभाव भी निकट भविष्य में दिखाई देने लगेंगे। जब इस प्रभाव के कारण समुद्र के जल स्तर की ऊँचाई कुछ और अधिक बढ़ जाएगी तब वे क्या करेंगे? अतः इन क्षेत्रों के निवासियों के बीच हमें इस प्रकार वैज्ञानिक चेतना ले आनी होगी जिससे वे भविष्य में आनेवाली आपदा से बचने के प्रयत्न अभी से शुरू कर सकें। यहाँ मैं पुनः याद दिलाना चाहूँगा कि विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का सुनियोजित ढंग से उपयोग करके ही यह कार्य किया जा सकता है। एक ईमानदार राजनीतिक इच्छाशक्ति के बिना इस उद्देश्य को पूरा करना कठिन होगा।

हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि हमारे विकास के एजेंडा के हृदय में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी को स्थान मिला हुआ है या नहीं! इसके लिए सभी शोध संस्थाओं तथा शोध गतिविधियों को ऐसी परियोजनाओं की ओर लगाना होगा जहाँ हम अपने आज तक के अर्जित विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की चेष्टाओं को विकास की नीतियों के साथ जोड़कर कार्य कर सकें। इसके लिए उच्च स्तर की विज्ञान सलाहकार समितियाँ गठित करनी होंगी जिसमें हर क्षेत्र के विशेषज्ञ शामिल हों और जिनकी संवेदनाएँ आम जनता के भविष्य के साथ जुड़ी हुई हों। हमें इस काम के लिए प्राथमिकता के क्षेत्रों की पहचान करनी होगी तथा साथ-ही-साथ ऐसी योजनाएँ बनानी होंगी जहाँ आधुनिक विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी को प्रयोग में लाया जा सके। इस काम के लिए एक प्रभावशाली विज्ञान संचार प्रणाली भी विकसित करनी होगी।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हमें इस बात को सुनिश्चित करना होगा कि जरूरतमंदों तक विज्ञान और प्रौद्योगिकी को पहुँचाया जा सके। आज तीसरी दुनिया के विभिन्न राष्ट्रों में आम जन के बीच फैली हुई गरीबी, निरक्षरता, कुपोषण, भुखमरी को दूर करने तथा बेहतर स्वास्थ्य सेवाएँ एवं शिक्षा को प्रभावशाली ढंग से मुहय्या कराना जरूरी है। तीसरी दुनिया में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की पहुँच अभी भी बहुत कम हो सकती है, जो आश्चर्यजनक है। विकसित राष्ट्रों ने तीसरी दुनिया को केवल एक उपभोक्ता बाजार के रूप में ही देखा है तथा उनका दोहन भी वे उसी प्रकार कर रहे हैं। खुले बाजार और भूमंडलीकरण के माहौल में क्या यह आशा की जा सकती है कि विकसित देश तीसरी दुनिया के गरीब मुल्कों में रहनेवाली करोड़ों जनता की बदहाली को दूर करने में अपने व्यापारिक तथा राजनीतिक स्वार्थों को छोड़कर मानवतावादी दृष्टिकोण अपना सकेंगे? दुनिया को और बेहतर बनाने के लिए आज इसकी जरूरत शिद्दत से महसूस की जा रही है। यदि ऐसा हो सके तो विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के सामाजिक उत्तरदायित्व को पूरा होने में देर नहीं लगेगी। विकसित राष्ट्रों को इस काम के लिए आगे आना ही होगा तथा हर प्रकार की सहायता करनी होगी। अनुदान और सहायता के रूप में विकसित देश यदाकदा जो संवेदना तीसरी दुनिया के लोगों के प्रति व्यक्त करते हैं वह उन्हें और भी निःसहाय बना देती है। यहाँ के लोगों को अपने

कदमों पर खड़ा होने के तरीके विकसित किए जाने चाहिए न कि उन्हें असहाय हालत में दूसरों की ओर हाथ फैलाने वाला निरीह प्राणी बनाना चाहिए। आदमी की यह फितरत रही है कि वह मुफ्त मिलने वाली सहायता के प्रति हमेशा से आकर्षित होता रहा है तथा उसी पर धीरे-धीरे निर्भर भी होता जाता है। इस मानसिकता को तोड़ना और दूर करना आज के विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के सहारे तभी किया जा सकता है जब वे अपने स्वयं के विकास के लिए इनका इस्तेमाल खुद करें और अपना सम्बल स्वयं बन सकें। तीसरी दुनिया के लोगों को इस बात को गांठ बाँध लेना है कि वे अपने समाज तथा राष्ट्र के विकास में अपने संसाधनों के सहारे अपनी क्षमताओं का विकास करने के लिए कटिबद्ध रहेंगे और विकसित देशों पर अपनी निर्भरता को कम से कमतर करते जाएँगे। विकसित देशों को भी इस बात का बराबर ध्यान रखना होगा कि वे तीसरी दुनिया के राष्ट्रों की क्षमता को विकसित करने में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के ज्ञान तथा उपादानों के माध्यम से बराबर सहायता करते रहें। वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य तथा जरूरतों को ध्यान में रखते हुए आनेवाले वर्षों में विज्ञान का विकास के निमित्त आगे ले जाना ही सारी दुनिया में समृद्धि ला सकेगा, ऐसा विश्वास किया जाना चाहिए।

आल्डुअस हक्सले की यह बात आज महत्वपूर्ण हो जाती है कि, “आम आदमी को ऐसे साधन उपलब्ध कराना होगा जो उनके लिए लाभदायक और उपयोगी हों, उन्हें स्वयं अपना रोजगार चलाने का अवसर दे सकें या उन्हें स्वशासी व सहकारी-समूह के सदस्यों की तरह अपने जीवन-निर्वाह का अथवा स्थानीय बाजार की जरूरतों को पूरा करने का मौका दे सकें। जनसंख्या, भूमि उपलब्धि, उत्पादन के साधनों के स्वामित्व और राजनीतिक तथा आर्थिक सत्ता के अधिकाधिक विकेन्द्रीकरण का मार्ग प्रशस्त कर सकती है। तब निश्चय ही आज की अपेक्षा कहीं अधिक लोग मानवीय दृष्टि से अधिक संतोषपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकेंगे।”

जहाँ तक भारत का सवाल है तो यहाँ नई तकनीकों को तेजी के साथ कई क्षेत्रों में लागू करने तथा विगत सरकार की आर्थिक नीतियों के कारण समाज के एक वर्ग विशेष को अत्यधिक लाभ पहुँचा है। परन्तु इस तकनीकी विकास का लाभ ग्रामीण क्षेत्रों की जनता तक नहीं पहुँच पाया, जो आज भी पीने के शुद्ध पानी, खाने के लिए भरपूर भोजन और रहने के लिए स्वस्थ तथा सुरक्षित आवास जैसी आधारभूत मानवीय आवश्यकताओं से वंचित हैं।

इस बीच पनपी एक और महत्वपूर्ण गतिविधि हमारा ध्यान आकर्षित करती है। कई गैर सरकारी तथा स्वयंसेवी संस्थाएँ, जो विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में कार्य कर रही हैं, सामाजिक तथा आर्थिक मुद्दों में सक्रिय भागीदारी कर सरकारों पर दबाव बनाने की राजनीति प्रारम्भ कर चुकी हैं। इसका सबसे अच्छा उदाहरण दिल्ली स्थित ‘सेन्टर फॉर साइंस एंड इन्वायरन्मेंट’ द्वारा शहरों में वाहनों द्वारा फैलाए जा रहे

वायु प्रदूषण को रोकने के लिए सरकारी नीतियों में बदलाव ले आने के लिए किए गए लगातार प्रयास तथा कोका कोला कम्पनी द्वारा बाजार में उपलब्ध कराए जानेवाले अपने ब्रेन्डेड शीतल पेय में कीटनाशकों तथा अन्य अस्वास्थ्यकर रसायनों के मिलावट का मामला रहा। इन प्रयासों का दिल्ली सरकार पर जबरदस्त प्रभाव पड़ा और उसने इस काम के लिए कठोर नियम कानून बनाए तथा उनका अनुपालन भी सुनिश्चित किया। इन्हीं प्रयासों के कारण आज दिल्ली में वायु प्रदूषण एक सुरक्षित स्तर तक नियंत्रित हो सका है।

ऐसी जागरूक संस्थाओं द्वारा सामाजिक तथा आर्थिक मुद्दों में भागीदारी की राजनीति से अन्य विकासशील देशों की जनता भी महत्वपूर्ण सबक ले सकती है। यह उदाहरण इस बात को रेखांकित करता है कि यद्यपि प्रौद्योगिकी का विकास सामाजिक तथा आर्थिक प्रगति के लिए एक आवश्यक शर्त तथा जरूरत है, परन्तु यही सब कुछ नहीं हैं। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि इस विकसित प्रौद्योगिकी के लाभ को अधिकांश लोगों तक पहुँचाने तथा उनके जीवन में इसे अनुभव करने के अवसर प्रदान करने के लिए सामयिक तथा कारगर नीतियाँ बनाई जाएँ और उनको ठीक ढंग से लागू करना भी सुनिश्चित किया जाए।

भारत में ग्रामीण जनता की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जरूरी प्रौद्योगिकी विकसित करने की पूरी क्षमता है, ऐसी नीतियाँ बनाने वाले विशेषज्ञ भी मौजूद हैं जिनके पास नवीन अवधारणाओं की कोई कमी नहीं, परन्तु कमी है तो ऐसे चमत्कारी व्यक्तित्व वाले राजनेता की जो सभी दबावों से मुक्त होकर कारगर नीतियाँ बना सके और इन नीतियों के कार्यान्वयन को भी सुनिश्चित कर सके जो ग्रामीण जन की खुशहाली के द्वार खोल दे तथा उन्हें राष्ट्रीय विकास की मुख्य धारा से भी जोड़ सके। क्या वर्तमान सरकार इस दिशा में ठोस प्रयास करेगी? आजादी के आन्दोलन के समय महात्मा गांधी ने भी ऐसा ही स्वप्न देखा था।

अपने क्षेत्र की आवश्यकताओं की पूरी जानकारी रखने वाली और स्थानीय स्तर पर सक्रिय रूप से कार्य कर रहीं वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिक संगठनों तथा संस्थाओं के बीच समन्वय स्थापित कर यह महत्वपूर्ण कार्य किया जा सकता है। ध्यान देने की बात यह है कि हमें पश्चिम की उन तकनीकों की अंधाधुंध नकल नहीं करनी है जो हमारे स्थानीय भूगोल, विभिन्न संसाधनों तथा सामाजिक आवश्यकताओं के लिए अनुपयोगी हों। यह आवश्यक नहीं कि भारत के उत्तरी भाग के लिए उपयोगी योजनाएँ तथा प्रौद्योगिकी हूबहू- दक्षिण भारत के लिए भी उपयोगी हों। चक्रवात या सुनामी की पूर्व सूचना देने तथा उससे बचाव के उपयोग में लाई जानेवाली प्रौद्योगिकी तथा योजनाओं का उपयोग तो उन्हीं प्रदेशों में हो सकेगा जहाँ के तटों पर सागर हिलोरें मारता है जबकि गंगा-जमुना के मैदानी इलाकों या हिमालय क्षेत्र के लिए यह अनुपयोगी सिद्ध होगी। ठीक इसके विपरीत ग्लेशियरों को पिघलने से बचाने या फिर

मैदानी इलाकों में बाढ़ नियंत्रण के लिए अपनाई जानेवाली तकनीकों दक्षिण भारत के लिए उपयोग में नहीं लाई जा सकतीं। इसलिए हमें हमेशा व्यावहारिक तथा वैकल्पिक तकनीकों तथा योजनाओं के विकास के लिए प्रयास करना होगा, जिसकी आज बेहद जरूरत है।

भारत में सबसे पहले आज इस बात की जरूरत है कि स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर नई तकनीकों की खोज की जाए तथा सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप उनका विकास किया जाए जो आधुनिक विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी पर आधारित तो हों ही साथ-ही-साथ ग्रामीण इलाकों की गरीब जनता की मूल आवश्यकताओं को भी पूरा करती हों। यह सामुदायिक विकास को न केवल सुनिश्चित करेगा बल्कि विकास के नए द्वार खोलने में भी पूर्णतः सक्षम होगा।

भारत में आम जन की खुशहाली के लिए सूचना प्रौद्योगिकी सम्बन्धी नीतियों पर भी फिर से विचार करना जरूरी है। ग्रामीण विकास तथा गरीबी दूर करने में सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका को भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए। आज जरूरत है विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी को मानवीय चेहरा प्रदान करने की। शायद यही प्रक्रिया इंसान को खुशहाल बनाने में सक्षम होगी। आज मानवीय समस्याओं का बेहतर हल पेश करनेवाली प्रौद्योगिकी की जरूरत है।

ऐसे कार्यों की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए हमें स्वभाषा के महत्त्व को भी समझना आवश्यक होगा। विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी को स्वभाषा के माध्यम से जन साधारण तक पहुँचा कर हम उन्हें विकास की योजनाओं में न केवल सहभागी बना सकेंगे बल्कि उनके भीतर एक ऐसा विश्वास भी पैदा कर सकेंगे जो उनका सहयोग दिलाने में भी कारगर सिद्ध होगा। विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की बातें जब उन्हें अपनी भाषा में समझाई जाएँगी तब वे अपने अच्छे-बुरे का फैसला स्वयं ले सकेंगे तथा अपनी बात को भी खुलकर समझा सकेंगे। इस लिए स्वभाषा में लोकोपयोगी वैज्ञानिक साहित्य का सृजन किया जाना उतना ही जरूरी है जितना कि नई योजनाओं का बनाया जाना। हमें गर्व है कि हिन्दी भाषा में इस काम की महत्ता को स्वतन्त्रता पूर्व ही वैज्ञानिकों तथा साहित्यकारों ने आत्मसात कर लिया था और इस दिशा में वे लगातार प्रयत्न भी करते रहें हैं। आज हिन्दी भाषा में प्रचुर मात्रा में वैज्ञानिक साहित्य उपलब्ध है परन्तु आधुनिक युग की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए हमें इस दिशा में और भी ठोस प्रयत्न करने की आवश्यकता है। तभी हम भारत की आम जनता को विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की नवीन जानकारीयों दे सकेंगे जो उन्हें अपनी समस्याओं को स्वयं हल करने में मददगार होंगी।

## हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों की उपलब्धियाँ

नरेन्द्र कोहली\*

इतिहास, ऐतिहासिक उपन्यास, ऐतिहासिक रोमांस और ऐतिहासाभासिक कृतियों का अन्तर हम समझते हैं; किन्तु ऐतिहासिक उपन्यास का लक्ष्य क्या है? क्या उसका लक्ष्य उपन्यास से कुछ भिन्न हो सकता है? मैं समझता हूँ कि ऐतिहासिक उपन्यास की सृजन प्रक्रिया भिन्न हो सकती है, भिन्न है भी; किन्तु उसका लक्ष्य न उपन्यास से भिन्न हो सकता है, न समग्र साहित्य से। सृजन प्रक्रिया की भिन्नता के विषय में काव्यशास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों को विचार करना चाहिए। आखिर क्या कारण था कि एक ही काल में, एक ही नगर में प्रेमचन्द और जयशंकर प्रसाद अपने-अपने ढंग से अलग-अलग प्रकार की रचनाएँ रच रहे थे। नन्ददुलारे वाजपेयी यह आरोप लगा रहे थे कि आज जो कुछ आप समाचार पत्र में पढ़ते हैं, कल उसे ही आप प्रेमचन्द की कहानियों में पढ़ सकते हैं उधर प्रेमचन्द कह रहे थे कि जयशंकर प्रसाद गड़े मुर्दे उखाड़ रहे थे।

वैसे तो किसी भी कालखंड विशेष का चित्रण ऐतिहासिक उपन्यास हो सकता है। 'रंगभूमि', 'बूँद और समुद्र', 'झूठा सच' और 'उत्तर कथा' भी, अपने युग का प्रामाणिक चित्रण करने के कारण, ऐतिहासिक उपन्यास हो सकते हैं; किन्तु ऐतिहासिक उपन्यास होने के लिए एक अनिवार्य शर्त है उसकी कथा का प्रख्यात होना, पाठकों का उससे पूर्वपरिचित होना।

दूसरी ओर हम अपनी पुराकथाओं को भी अपना प्राचीन इतिहास ही मानते हैं; किन्तु विद्वानों का एक वर्ग विदेशी सिद्धान्तों के अनुसार उसे मिथ अथवा मिथ्या ही मानना चाहता है। अतः वह उसे अपना इतिहास नहीं मानता। परिणामतः पौराणिक उपन्यासों की, ऐतिहासिक उपन्यासों से एक पृथक् श्रेणी बन गई है। पुराकथाओं को अपना इतिहास मानते हुए भी मैं चाहूँगा कि पौराणिक उपन्यासों का वर्ग ऐतिहासिक उपन्यासों से पृथक् ही रहे। कारण? पौराणिक उपन्यास केवल एक काल विशेष की

\* लेखक हिन्दी के जानेमाने उपन्यासकार हैं। पता : 175, वैशाली, पीतमपुरा, दिल्ली-110088

घटनाएँ ही नहीं हैं, उनकी एक मूल्य व्यवस्था है। वे उपनिषदों के मूल्यों को चरित्रों के माध्यम से उपन्यास के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। जो उपन्यास पौराणिक काल, घटनाओं और चरित्रों पर आधृत तो हैं, किन्तु उस मूल्य व्यवस्था का अनुमोदन नहीं करते, उन्हें पौराणिक उपन्यास कहना उचित नहीं है। उनमें से अधिकांश तो पौराणिक मूल्य व्यवस्था से अपरिचित अथवा उनके विरोधी लोगों द्वारा उन्हें ध्वस्त करने के लिए लिखे गए हैं। इस प्रकार ऐतिहासिक उपन्यासों का क्षेत्र, बहुत विस्तृत है। परिणामतः विभिन्न मान्यताओं, रुचियों और विचारधाराओं के अनुसार ऐतिहासिक उपन्यास और ऐतिहासिक उपन्यासकारों की गणना और आकलन होते रहते हैं।

प्रेमचन्द पूर्व और प्रेमचन्द की ऐतिहासिक और जीवनीपरक कथाएँ समाज को अपना गौरव और शौर्य स्मरण कराने में सफल हुई थीं। किन्तु उनका जीवन दीर्घकालीन नहीं हुआ। प्रेमचन्द रचित 'हरिसिंह नलवा' आज कितने लोगों को स्मरण है? उनका बस ऐतिहासिक महत्त्व ही रह गया है।

वृंदावनलाल वर्मा के अपने वक्तव्यों के अनुसार उनके ऐतिहासिक उपन्यास लिखने के कुछ सामान्य तथा कुछ विशेष कारण हैं। उन्होंने स्वीकार किया है कि सर वाल्टर स्कॉट के अंग्रेजी उपन्यास पढ़कर उनके मन में यह बात आइ थी कि वे भारत के सम्मान की प्रतिष्ठा के लिए भारत के इतिहास के गौरवपूर्ण पृष्ठों को लेकर वैसे ही उपन्यास लिखेंगे। इस सामान्य कारण के साथ-साथ एक विशेष कारण देते हुए उन्होंने एक घटना की चर्चा की है। बुंदेलखण्ड में बसे एक पंजाबी परिवार के यहाँ एक विवाह के अवसर पर वर्मा जी भी आमंत्रित थे। वहाँ उस पंजाबी परिवार के अनेक सगे सम्बन्धी और परिचित भी उपस्थित थे। उन लोगों के मध्य होनेवाला वार्तालाप वर्मा जी ने भी सुना, जिसमें वे लोग बुंदेलखण्ड की निर्धनता, पिछड़ेपन तथा अशिक्षा के विषय में अपमानजनक ढंग से चर्चा कर रहे थे और इस क्षेत्र तथा वहाँ के निवासियों के प्रति अपनी घृणा व्यक्त कर रहे थे। वर्मा जी ने स्वीकार किया है कि यह सब उन्हें अत्यन्त अपमानजनक लगा और उन्होंने वहीं संकल्प किया कि वे बुंदेलखण्ड के गौरव को प्रतिष्ठित करने के लिए उपन्यास लिखेंगे।

उन्होंने अपनी क्षमतानुसार अपने अभीप्सित काल के इतिहास की छानबीन की, अपने कथ्य के लिए प्रमाण जुटाए; और थोड़े बहुत ऐतिहासिक रोमांस की सृष्टि भी की। यद्यपि उनका क्षेत्र केवल बुंदेलखण्ड तक ही सीमित है; किन्तु हम जानते हैं कि अपनी धरती से प्रेम करनेवाला लेखक अपनी संस्कृति से भी प्रेम करता है। वस्तुतः इतिहास और भूगोल ही तो संस्कृति का निर्माण करते हैं। उन्होंने 'विराटा की पद्मिनी' और 'गढ़ कुंडार' जैसे ऐतिहासिक रोमांस और 'झांसी की रानी' जैसा इतिहास-बोझिल उपन्यास भी लिखा; किन्तु 'मृगनयनी' जैसे संतुलित उपन्यास भी आए। उनका दृष्टिकोण अत्यन्त स्पष्ट है। लेखक अपने समय से मुक्त नहीं होता। वृंदावनलाल वर्मा के पास अपनी थीम है। वे अपनी लेखनी से एक युद्ध कर रहे हैं।

उनका लेखन एक संघर्ष है। वे देश का सर्वश्रेष्ठ प्रस्तुत करने का प्रयत्न कर रहे हैं; और अपने समाज का मनोबल भी बढ़ा रहे हैं।

स्वामी विवेकानन्द ने परिव्राजक के रूप में भारत का भ्रमण करते हुए, अलवर में अपने शिष्यों से कहा था कि आज तक भारत का इतिहास विदेशियों ने ही लिखा है। भारत का इतिहास अव्यवस्थित है। उसमें कालक्रम परिशुद्ध और यथार्थ नहीं है। अंग्रेजों तथा अन्य विदेशियों द्वारा लिखा गया इतिहास हमारे मनोबल को तोड़ने के लिए ही है। वह हमें दुर्बल ही बनाएगा। वे हमें हमारे दोष ही बताते हैं। जो विदेशी, हमारे तौर तरीके, रीतिरिवाज, हमारे धर्म और दर्शन को बहुत कम समझते हैं, वे हमारा वास्तविक और पूर्वाग्रहरहित इतिहास कैसे लिख सकते हैं? इसीलिए उसमें अनेक भ्रांतियाँ घर कर गई हैं। अब यह हमारे लिए है कि हम अपना स्वतन्त्र मार्ग खोजें। अपने प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन करें, शोध करें; और परिशुद्ध, यथार्थ, सहानुभूतिपूर्ण तथा आत्मा को उद्दीप्त कर देनेवाला इतिहास लिखें।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री के भी अपने लेखक के सम्बन्ध में कुछ ऐसे ही वक्तव्य मिल जाते हैं। 'सोमनाथ' के विषय में उन्होंने लिखा है कि कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के उपन्यास 'जय सोमनाथ' को पढ़कर उनके मन में आकांक्षा जागी कि वे मुंशी के नहले पर अपना दहला मारें; और उन्होंने अपने उपन्यास 'सोमनाथ' की रचना की। 'वयंरक्षामः' की भूमिका में उन्होंने स्वीकार किया है कि उन्होंने कुछ नवीन तथ्यों की खोज की है, जिन्हें वे पाठक के मुँह पर मार रहे हैं। परिणामतः नहले पर दहला मारने के उग्र प्रयास में 'सोमनाथ' अधिक-से-अधिक चामत्कारिक तथा रोमानी उपन्यास हो गया है; और अपने ज्ञान के प्रदर्शन तथा अपने खोजे हुए तथ्यों को पाठकों के सम्मुख रखने की उतावली में, उपन्यास विधा की आवश्यकताओं की पूर्ण उपेक्षा कर वे 'वयंरक्षामः' और 'सोना और खून' में पृष्ठों के पृष्ठ अनावश्यक तथा अतिरेकपूर्ण विवरणों से भरते चले गए हैं। किसी विशिष्ट कथ्य अथवा प्रतिपाद्य के अभाव ने उनकी इस प्रलाप में विशेष सहायता की है। ये कोई ऐसे लक्ष्य नहीं है, जो किसी कृति को साहित्यिक महत्त्व दिला सकें अथवा वह राष्ट्र और समाज की स्मृति में अपने लिए दीर्घकालीन स्थान बना सकें। 'सोना और खून' लिखते हुए चतुरसेन शास्त्री, कदाचित् इतिहास की री में ऐसे बह गए कि भूल ही गए कि वे उपन्यास लिख रहे हैं, अतः सैकड़ों पृष्ठ इतिहास ही लिखते चले गए। इससे उपन्यास तत्त्व की हानि होती है; क्योंकि उपन्यास मात्र इतिहास नहीं है। 'वैशाली की नगरवधू' तथा अन्य अनेक ऐतिहासिक उपन्यास लिखने का लक्ष्य एक विशेष प्रकार के परिवेश का निर्माण करना भी हो सकता है; किन्तु इस से इंकार नहीं किया जा सकता कि अनेक लोग 'वैशाली की नगरवधू' में स्त्री की बाध्यता और पीड़ा देखते हैं। वैसे इतिहास का वह युग, एक ऐसा काल था, जिसमें साहित्यकार को अनेक आकर्षण दिखाई देते हैं। महात्मा बुद्ध, आप्रपाली, सिंह सेनापति तथा अजातशत्रु के आसपास हिन्दी साहित्य की अनेक महत्त्वपूर्ण कृतियों ने जन्म लिया है। उसमें स्त्री की

असहायता देखी जाए, या गणतंत्रों के निर्माण और उनके स्वरूप की चर्चा की जाए, वात्सल्य की कथा कही जाए, या फिर मार्क्सवादी दर्शन का सादृश्य ढूँढा जाएसत्य यह है कि वह परिवेश कई दृष्टियों से असाधारण रूप से रोमानी था।

रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों की भी एक लम्बी सूची है। यहाँ तक कि उन्होंने उस काल पर भी लम्बे उपन्यास लिखे हैं, जिसका प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध नहीं है। अतः उसे प्रागैतिहासिक काल कहा जाता है। 'मुर्दों का टीला' में उन्होंने उस युग का काल्पनिक चित्र प्रस्तुत किया है और अपने अनुमान से एक संस्कृति के विलुप्त हो जाने का कारण बताया है। किन्तु जिस संस्कृति का विस्तार आज हरियाणा ही नहीं गुजरात तक प्रमाणित हो रहा हो, उसका एक जलप्लावन में समाप्त हो जाना, बहुत सहमत नहीं करता। डूबता एक कस्बा है, नगर डूबता है। कभी-कभी भूकम्प से पॉम्पेयी जैसा नगर ध्वस्त हो जाता है। इस प्रकार एक पूरी संस्कृति जलप्लावन में समाप्त नहीं हो जाती। या फिर वह कोई खण्ड प्रलय ही था। किन्तु जहाँ की यह चर्चा है, वहाँ से जल विलुप्त होने के प्रमाण तो मिले हैं, जलप्लावन के नहीं। फिर भी लेखक की ऐतिहासिक कल्पना की उड़ान का आनन्द तो वैसे उपन्यास देते ही हैं।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के सारे ही उपन्यास ऐतिहासिकपौराणिक उपन्यासों की श्रेणी में आते हैं। उनका परिवेश चित्रण अद्भुत है। वे प्रामाणिक भी हैं और आकर्षक भी। किन्तु 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की नायिका भट्टिणी ऐतिहासिक चरित्र नहीं है; और उपन्यास की अनेक घटनाएँ ही नहीं, उसका प्रतिपाद्य भी भट्टिणी पर ही निर्भर करता है। अतः वह उपन्यास ऐतिहासिक न रहकर ऐतिहासिक रोमांस हो जाता है; किन्तु उपन्यास की दृष्टि से वह दुर्लभ कृति है। 'चारुचंद्रलेख' तथा 'पुनर्नवा' प्राचीन साहित्यिक कृतियों तथा प्रख्यात लोकथाओं पर आधृत कृतियाँ हैं। 'अनामदास का पोथा', उपनिषद् के पात्र रैक्व मुनि को केन्द्रीय पात्र बनाकर लिखा गया है। अतः उसकी गिनती पौराणिक उपन्यासों में ही होती है; किन्तु स्पष्टतः लेखक के पास अपना प्रतिपाद्य है। वह अपने समय की समस्याओं को सार्वदेशिक और सार्वकालिक समस्याओं के साथ जोड़कर उनके शाश्वत समाधान को खोजकर प्रस्तुत कर रहा है।

यह सारा सर्वेक्षण मेरे मन में यह धारणा दृढ़ करता है कि ऐतिहासिक उपन्यास की सार्थकता केवल उस देश और काल के सुन्दर और आकर्षक चित्रण मात्र में नहीं है। वह अपने युग को असीम और निर्बाध काल के साथ जोड़ता है और उसका अपना एक निश्चित प्रतिपाद्य भी होता है। उसके अभाव में कोई कृति महत्त्व प्राप्त नहीं कर सकती। यशपाल की 'दिव्या' एक सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए लिखी गई। किन्तु उसमें इतिहास नहीं, मात्र ऐतिहासिक परिवेश है। वहाँ इतिहास का कलात्मक आभास मात्र है, जैसे भगवतीचरण वर्मा की 'चित्रलेखा' में है। वे ऐतिहासिक उपन्यास नहीं हैं। वहाँ अपनी बात कहने के लिए इतिहास का कलात्मक भ्रम मात्र उत्पन्न किया गया है।

विधाओं के इस क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न जीवनी और उपन्यास का भी है। जीवनी पूर्णतः ऐतिहासिक कृति है; किन्तु वह उपन्यास नहीं है। रांगेय राघव ने उपन्यास के बहुत निकट रहते हुए, अनेक पात्रों की ऐतिहासिक जीवनियाँ लिखी हैं।

अमृतलाल नागर ने अनेक युगों से सम्बन्धित अनेक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं और उन सबका अपना-अपना महत्त्व है। किन्तु उनके तीन उपन्यास 'एकदा नेमिषारण्य' 'मानस का हंस' तथा 'खंजन नयन' कुछ स्पष्टीकरण चाहते हैं। 'एकदा नेमिषारण्य' के केन्द्र में महाभारत-लेखन का विषय है। वह उपन्यास महाभारत कथा से सम्बन्धित नहीं है, अतः वह पौराणिक उपन्यास नहीं है। उसकी समस्या केवल इतनी है कि महाभारत की वर्तमान प्रति, किस काल में और किन लोगों के द्वारा प्रस्तुत की गई। वह काल पूर्णतः ऐतिहासिक है। पात्र चाहे काल्पनिक ही हों। उपन्यास का नायक 'महाभारत का पुनर्लेखन' है।

'मानस का हंस' और 'खंजन नयन' हिन्दी के दो महान् कवियों को नायक बनाकर लिखे गए उपन्यास हैं। यद्यपि 'खंजन नयन' के महत्त्व से मुझे कोई इंकार नहीं है; किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि अपनी किन्हीं जटिलताओं के कारण वह 'मानस का हंस' के समान न तो चर्चित हुआ और न ही लोकप्रिय ही।

'मानस का हंस' अनेक रूपों में विलक्षण उपन्यास है। नायक गोस्वामी तुलसीदास के समय की दृष्टि से यह ऐतिहासिक उपन्यास है और उनके जीवन, चिन्तन, साधना तपस्या, लक्ष्य और उपलब्धि की दृष्टि से वह किसी पौराणिक उपन्यास से भिन्न नहीं लगता। उसका नायक पुराण पुरुष है।...किन्तु पुराण पुरुष को आज के एक साधारण पुरुष से अत्यन्त दूर और भिन्न होना चाहिए, जबकि तुलसी एक ऐसे अस्तित्व हैं, जिन्हें हम प्रतिदिन स्मरण करते हैं और अपने बहुत निकट पाते हैं। उनसे तादात्म्य कर सकते हैं।

वह न इन्द्र की अमरावती में जन्म लेता है, न किसी ऋषि आश्रम में। एक अभागा बालक है तुलसी, जो उस समय जन्म लेता है, जब देश और ग्राम पर संकट आया हुआ है। युद्ध चल रहा है। सत्ता का हस्तांतरण हो रहा है। माता का देहान्त हो जाता है और पिता उसे अभागा मानकर त्याग देते हैं। अंतः और बाह्य साक्ष्यों पर चित्रित किया गया उनका बचपन बताता है कि जो कोई उसे सहारा देने का प्रयत्न करता है, वह संसार के मंच से हट जाता है। उसमें कुछ भी अलौकिक नहीं है, फिर भी ईश्वरीय लीला का प्रवेश हो ही जाता है। जिसका कोई न हो, उसका ईश्वर होता है। तुलसी का भी ईश्वर ही है। वस्तुतः यह भी पुराणों में आई भक्तों की कथा जैसी ही घटना है कि व्यक्ति का अहं पूर्णतः विगलित हो जाता है और वह ईश्वर के सम्मुख पूर्ण आत्मसमर्पण कर देता है, तो ईश्वर उसका हाथ पकड़ लेते हैं।

किशोर होने तक तुलसी देख लेते हैं कि संसार में कितनी हिंसा है, कितना स्वार्थ है। भूख है, नंगई है। अन्न के लिए स्त्री और पुरुष का शरीर मंडी में बिकता

है। सत्ता अत्याचारी है, धन करुणाहीन है, धर्म के केन्द्र भोग में डूबे हैं। ईर्ष्या द्वेष में लिप्त हैं। प्रत्येक भक्त के समान तुलसी भी अपने ईश्वर से पूछते हैं कि यदि यह सृष्टि उसकी है, तो यह संसार इतना नारकीय क्यों है?

किशोरावस्था में नारी प्रेम है; किन्तु तुलसी अधर्म के मार्ग से अपना प्रेम प्राप्त करने का न साहस करते हैं, न प्रयत्न। युवावस्था में दाम्पत्य है और दाम्पत्य का संघर्ष। नारी पुरुष का विरोध। मायके और ससुराल का पक्ष। पुत्री, पत्नी और नारी का मनोविज्ञान।...और फिर वैराग्य का आरम्भ। अंतर्हिं तोहि तजेंगे पामर, जो न तजे तू अब ही तें।...यहाँ से तुलसी एक सामान्य पुरुष से कुछ ऊपर उठते दिखते हैं। यह अस्वाभाविक नहीं है। संवेदनशील मन, वैराग्य का भाव और पत्नी की कठोरता। ऐसे में दो ही विकल्प हैं तो वे कामिनी के दास हो जाते, या फिर काम से मुक्त हो जाते। सत्वहीन होते तो जीवन भर को कामिनी के दास होकर रिरियाते। पर राम का दास काम का दास कैसे हो जाता?

तुलसी के माध्यम से एक कवि के निर्माण का चित्रण बहुत ही प्रामाणिक रूप से हुआ है। सर्जक मन तो इस प्रकार उनके साथ हो लेता है, जैसे सृजन प्रक्रिया को जानने और समझने के लिए, उनका अनुचर हो गया हो।

ज्योतिषियों और लेखकों की प्रतिस्पर्धाएँ। विद्वानों का एक दूसरे के विरुद्ध षड्यंत्र। धन और यश के लिए मारामारी। ईर्ष्या द्वेष के बिना तो साहित्य का शायद किसी युग में अस्तित्व रहा ही नहीं है।

साधना के मार्ग में बाधाएँ हैं, प्रलोभन हैं। वे स्त्री के रूप में भी आते हैं और धन-सम्पत्ति के रूप में भी। किसी भी क्षेत्र का कोई भी साधक जानता है कि वह आगे बढ़ता है, तो उसे रोकने के लिए विघ्न बाधाओं के रूप में छोटी-मोटी उपलब्धियाँ ही आती हैं। यदि वह उनमें उलझ जाता है तो आगे नहीं बढ़ता। उन्हें ठुकरा देता है तो बड़ी उपलब्धियों तक जा पहुँचता है।

तुलसी अपनी व्यक्तिगत सम्बन्धों से मुक्त होकर समग्र समाज के हो जाते हैं। अतः समाज की पीड़ा को देखते और समझते हैं। तभी तो सामाजिक सेवा को वे राम का काम बताते हैं। भूखे-प्यासे ब्रह्महत्यारे को जल और भोजन देते हैं। और जाति के नाम पर ललकार कर कहते हैंधूत कही, अवधूत कही, रजपूत कही, जोल्हा कही कोई। काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगारि न सोऊ।

यहीं से संसार और वैराग्य का सम्बन्ध स्पष्ट होता है। संसार और ब्रह्म का समन्वय होता है। संन्यासी और समाज का सम्बन्ध प्रकट होता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की 'अनामदास का पोथा' में आई अनेक उक्तियाँ यहाँ स्मरण हो आती हैं। वे कहते हैं कि तपस्या वन में नहीं होती, समाज में रहकर होती है। तुलसी को भी समाज की पीड़ा व्यापती है। वे समाज की सेवा में लग जाते हैं।

कामिनी और कंचन का त्याग ही प्रगति का मार्ग है। धन और यश की कामना को त्यागे बिना मुक्त नहीं हुआ जा सकता। तभी तो तुलसी कहते हैं कि धन की तृष्णा से भी बुरी है यश की लिप्सा। और अन्त में रहीम खानखाना द्वारा प्रस्तावित अकबर के दरबार की मंसबदारी को ठुकरा देते हैं।

अध्यात्म का वह सिद्धान्त कि दुखी की सेवा के समान दूसरा पुण्य नहीं है और 'पर पीड़ा सम नहीं अधमाई'। इसे व्यास ने भी कहा है और तुलसी ने भी पहचाना है। यहीं से स्पष्ट होता है कि संन्यास और वैराग्य का स्वरूप क्या है। स्वार्थ से ऊपर उठकर, आसक्ति का त्याग कर, देह के सम्बन्धों से मुक्त होकर ईश्वर की बनाई समग्र सृष्टि से प्रेम; और उसे शिव मानकर उसकी सेवा ही वैराग्य है। ईश्वर निर्भरता ही संन्यास है। इसी से अंततः साधक को ईश्वर की प्राप्ति होती है।

वस्तुतः अपने इतिहास के उज्ज्वल रूप की पूजा, अपनी संस्कृति की ही पूजा है। तुलसी ने रामचरितमानस में समग्र भारतीय संस्कृति का आसव प्रस्तुत किया था और तुलसी को कथा नायक बनाकर अमृतलाल नागर ने विदेशी आक्रमण की क्रूरता और विदेशी शासन की कठोरता के मध्य भी अपनी संस्कृति को अपने जीवन में उतारने और उसकी रक्षा के लिए संघर्ष को जीवंत कर दिया है।

भाषा की दृष्टि से भी ये सारे ही उपन्यास बहुत समर्थ और सबल हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्द तो अपना अर्थ स्वयं उद्घाटित करते चलते हैं। वे कथा सुनाते हुए भी शब्द विचार करते चलते हैं और नागर जी चरित्रों के अनुसार बोली को जिस प्रकार प्रस्तुत करते हैंवह अद्भुत है। उनके यहाँ ग्रामीण की अवधी, नागरी की अवधी, सुशिक्षित पंडित की अवधी और अनपढ़ की अवधी, हिन्दू की अवधी और मुसलमान की अवधी का भेद, अपने आप ही आपका ध्यान अपनी ओर खींचने लगता है।

इन उपन्यासों की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि इनमें इतिहास आज के पाठक को स्वयं से असंपृक्त अथवा बहुत दूर नहीं लगता। इहलोक और अध्यात्म दो विरोधी सत्ताएँ नहीं रह जातीं। आरण्यक जीवन और नागरिक जीवन एक-दूसरे से अपरिचित नहीं रह जाते।

उपन्यासकार के रूप में मुझे पिछले कितने ही वर्षों से इन प्रश्नों से जूझना पड़ रहा है। स्वामी विवेकानन्द के सम्बन्ध में मेरे उपन्यास 'तोड़ो कारा तोड़ो' का पहला खंड 'निर्माण' 1992 ई. में प्रकाशित हुआ था, दूसरा 'साधना' 1993 ई. में, तीसरा 'परिव्राजक' 2003 ई. में और चौथा 'निर्देश' 2004 ई. में। पहले खंड की सूचना पाकर, स्वामी जी के एक भक्त, जो संयोग से मेरे पाठक भी थे, ने पूछा था कि मैं स्वामी जी के विषय में सामग्री कहाँ से लूँगा? उनकी जीवनियाँ से ही तो। जब मैं उन जीवनियाँ में कुछ जोड़ नहीं सकता, कुछ घटा नहीं सकता, तो उपन्यास लिखने से मेरा अभिप्राय क्या है? उनकी एक नहीं अनेक अच्छी जीवनियाँ उपलब्ध हैं, ऐसे में उनके

विषय में मैं उपन्यास कैसे लिखूँगा और क्यों लिखूँगा? प्रश्न मेरे अपने मन में भी थे। आज भी हैं। ये प्रश्न विधा सम्बन्धी हैं। जीवनी और ऐतिहासिक उपन्यास में क्या अन्तर है? और जीवनीयों उपलब्ध हों तो क्या उपन्यास उससे कुछ अधिक दे सकता है? इन चौदह वर्षों में मैंने पाया कि ऐतिहासिक उपन्यास जीवनी से बहुत अधिक दे सकता है। यदि ऐसा न होता तो स्वामी विवेकानन्द की जीवनीयों और उनके भाषण इत्यादि पढ़कर भी पाठक को उपन्यास से ही अधिक तृप्ति क्यों मिलती? उपन्यास जीवनी से अधिक ऐतिहासिक नहीं होता। नहीं हो सकता। फिर भी पाठकों में उपन्यास की माँग क्यों है? स्वामी जी की कोई प्रामाणिक जीवनी नहीं बताती कि पिता के देहान्त के पश्चात् उनका परिवार अकस्मात् ही इतना निर्धन क्यों हो गया था। जीवनी बताती है कि उनकी बहनें थीं किन्तु पिता के देहान्त के पश्चात् पता ही नहीं चलता कि कहाँ गईं। जीवनीकार स्वामी जी की जीवनी लिख रहा है, अतः उनकी बहनों के विवाह की चर्चा क्यों करेगा? स्वामी जी को अल्मोड़ा में अपनी किस बहन की आत्महत्या का समाचार मिला था? ये तथा इस प्रकार के सैकड़ों प्रश्न जीवनीयों में अनुत्तरित ही रह जाते हैं। जीवनीकार कहता है कि स्वामी जी ने अजितसिंह से वेदान्त की चर्चा की। हरविलास शारदा और श्यामकृष्ण वर्मा से गम्भीर चर्चाएँ कीं। किन्तु वह यह नहीं बताता कि वे चर्चाएँ क्या थीं। वह यह नहीं बताता कि उनके साथ शिकागो तक जानेवाले लल्लू भाई कौन थे और वे बोस्टन के पश्चात् कहाँ विलुप्त हो गए। कुल मिलाकर जीवनी में लेखक सब स्थानों पर उपस्थित है और केवल सूचनाएँ दे रहा है। वह भी छान-छानकर। उपन्यासकार उस सारे परिवेश को जीवन्त बना देता है। वह ईश्वर के समान सारे पात्रों के मन में समा जाता है। वह सब कहीं व्याप्त है, पर दिखाई कहीं नहीं देता। वह परकाया प्रवेश करता है। अपने चरित्रों को दूर से नहीं देखता, उनके साथ तादात्म्य करता है। वही हो जाता है।

तो 'तोड़ो कारा तोड़ो' ऐतिहासिक उपन्यास बन जाता है। इतिहास और हमारे अपने युग का अन्तराल लगभग समाप्त हो जाता है। उसके नायक का राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है। वह नायक पुराण पुरुष है; किन्तु कलकत्ता नगर की सघन आबादी में जन्मा, पला और बढ़ा है। उसने कलकत्ता विश्वविद्यालय में अध्ययन किया है। वह राजकुमारों के समान पला है और अपने पिता के मित्रों के कारण ही दरिद्र हो जाता है। भूखे पेट, फटे और मैले कपड़ों में नंगे पाँव चलते हुए चक्कर खाकर गिर पड़ता है। ऐसे में उसे दिव्य अनुभूति होती है। अध्यात्म इस यथार्थ संसार में ऐसा प्रवेश करता है कि उस सुदर्शन पुरुष का, जिसे देखकर अमरीकी युवतियाँ पागल हो गई थीं, विवाह नहीं हो पाता। उसे एक साधारण सी पत्नी नहीं मिल पाती। जिसके विषय में डॉ. हेनरी जॉन राइट ने लिखा था कि उसकी विद्वत्ता, अमरीका के सारे विद्वान् प्रोफेसरों की सामूहिक विद्वत्ता से भी अधिक थी, उसे कलकत्ता नगर में सौ

रुपए की एक नौकरी नहीं मिलती। वह स्वयं स्वीकार करता है कि उसका जन्म इसलिए नहीं हुआ कि वह विवाह कर बच्चे पैदा करे और क्लर्की या मास्ट्री कर उनका पालन पोषण करे। वह एक लक्ष्य लेकर संसार में आया था। उसके गुरु ने उसे 'माँ का काम' कहा था।

भारत भर में घूमकर उसने भारत माता की संतानों का कष्ट देखा था। अतः विभिन्न रियासतों में घूम-घूमकर पुरातन ज्ञान को त्यागे बिना नूतन युग के ज्ञान को उससे जोड़ने को कहा था। खेतड़ी नरेश राजा अजितसिंह के प्रसाद के ऊपर भौतिकी की प्रयोगशाला खुलवा दी थी। वडोदरा के गायकवाड़ को कहा था कि अपने यहाँ के बालकों को तकनीकी शिक्षा दें और इंजीनियरिंग कॉलेज खोलें। अमरीका में कहा था, हम तुम्हें धर्म देंगे, तुम हमको उद्योग धंधे दो। एक संन्यासी इस देश के लिए शिक्षा नीति बना रहा था, ताकि देश से निर्धनता और अज्ञान दूर हो सके। अध्यात्म संसार के बहुत निकट आ गया था।

कन्या कुमारी में समाधि में स्वामी विवेकानन्द ने अपने लिए दो मार्ग देखे थे जगदम्बा के दर्शन, समाधि का सुख और अपने लिए मोक्ष। दूसरा था भारत माता की निर्धन और पीड़ित संतान की सेवा। उनके लिए भारतमाता और जगदम्बा में कोई अन्तर ही नहीं रह गया था।

वह संन्यासी विदेशियों द्वारा भारत माता के मुख पर पोती गई कालिमा को धोने के लिए अमरीका गया था और गया था कि वहाँ से स्वयं धन कमाकर लाए और इस देश के असहाय दरिद्रों की सहायता करे; क्योंकि वह जान गया था कि इस देश के धनी स्वार्थी और आत्मकेन्द्रित हैं तथा निर्धन असमर्थ हैं।

यह ऐतिहासिक उपन्यास ईशावास्योपनिषद की उस घोषणा को दोहराता है कि अध्यात्म की उपेक्षा कर केवल संसार की पूजा कर कोई देश अथवा समाज प्रसन्न नहीं रह सकता; और न ही कोई देश केवल अध्यात्म को अपना कर संसार की पूर्ण उपेक्षा कर अपना विकास कर अपने लिए सुख अर्जित कर सकता है।

हमारा ऐतिहासिक उपन्यास एक लम्बी यात्रा तयकर आया है और कुछ ऐसे निष्कर्षों पर पहुँच रहा है, जो हमारे समाज के लिए सिद्धान्त मात्र नहीं हैं। वह उनका दैनन्दिन जीवन है। वह उनको एक समग्र जीवनदर्शन दे रहा है, जो केवल इहलौकिकता का वर्णन करनेवाले सामाजिक-सांसारिक उपन्यास नहीं दे सकते। हाँ! पाठक से वह थोड़ी सात्विक बुद्धि की अपेक्षा भी करता है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि इस देश को अपनी स्वतन्त्रता के लिए भी राजनीति की दलदल में धँसने की आवश्यकता नहीं है। यदि हम अपना सात्विक चरित्र प्राप्त कर लेंगे तो हमारी समस्याओं का समाधान अपने आप ही हो जाएगा।



## गुणादय की बृहत्कथा : इतिहास और लोक-वाङ्मय

राजमल बोरा\*

1

गुणादय की बृहत्कथा मूल रूप में उपलब्ध नहीं है। उसके अनुवाद के रूप मिलते हैं। बृहत्कथा का रूपान्तर संस्कृत भाषा में सोमदेव ने कथा सरित्सागर में किया है। इसी तरह क्षेमेन्द्र ने बृहत्कथा मंजरी के नाम से संस्कृत में अनुवाद किया है। बुध स्वामी का 'बृहत्कथा श्लोक संग्रह' मिलता है। इनमें सोमदेव के अनुवाद को (कथासरित्सागर को) अधिक प्रसिद्ध मिली है। मैंने सोमदेव का मराठी में अनूदित रूपान्तर पढ़ा है। मराठी में अनुवाद ह. अ. भावे ने किया है। इसके पाँच भाग हैं। 18 (अठारह) लम्बकों में यह कथा लिखी गई है। श्रीधर व्यंकटेश केतकर ने इसके संस्कृत अनुवाद के आधार पर ही इसका उपयोग इतिहास के रूप में किया है। भाषा, धर्म और संस्कृति का विश्लेषण तो वे करते ही हैं किन्तु ऐतिहासिक शोध भी करते हैं। महाभारत के बाद के और गौतमबुद्ध के पूर्व का इतिहास वे इसी आधार पर प्रस्तुत करते हैं। इस इतिहास में भारत के बृहत् रूप को अवतरित करते हैं। ठीक इसी तरह दुर्गा भागवत ने इस कथासंग्रह का उपयोग लोकवाङ्मय के रूप में किया है। विश्व के प्राचीन कथासंग्रहों से तुलना करते हुए, उन्होंने लोक में प्रचलित प्राचीन कथाओं का विश्लेषण किया है। ये सब उन्होंने ह. अ. भावे द्वारा मराठी में अनूदित पाँचों भागों में आरम्भ में दी गई भूमिकाओं में किया है। साथ ही प्रत्येक भाग के अन्त में उन्होंने टिप्पणियाँ भी लिखी हैं उन सब को पढ़ जाँएँ तो हम इस लोक से ऊपर उठ जाते हैं। सभ्यता के विस्तृत चित्रों का अंकन वे करती हैं और हमें हमारी सभ्यता का परिचय भी देती हैं। इसी तरह हम देखें तो गुणादय की रचना पर हमें अभिमान होता है। संस्कृति को उन्होंने अलगाया नहीं, अपितु उसे विश्व की संस्कृति से जोड़ने का प्रयास किया है। नीचे मैं इन दोनों का परिचय

\* प्रोफेसर राजमल बोरा एम.ए., पी-एच.डी., डी.लिट., हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक एवं समालोचक एवं डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग के भूतपूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष रहे हैं। पता : 5, मनीषानगर, केशरसिंहपुरा, औरंगाबाद-431005

अलग-अलग दे रहा हूँ।

2

### इतिहास

केतकर महाभारत को भी ऐतिहासिक रचना मानकर, भारतवर्ष के इतिहास को प्रस्तुत करते हुए, उसी क्रम में गुणादय की रचना रखते हुए अपने ऐतिहासिक निर्णयों को लिखते हैं। वस्तुतः इस बहाने वे 'प्राचीन महाराष्ट्र' का रूप उजागर करना चाहते हैं। प्राचीन महाराष्ट्र उनके दो ग्रन्थ हैं। प्रथम भाग अपेक्षाकृत बड़ा है। उसको आदिपर्व कहा गया है। उसी के दूसरे विभाग को शातवाहन पर्व कहा है। प्रथम भाग के दोनों पर्वों की पृष्ठ संख्याएँ 622 है। दूसरा भाग राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास से सम्बन्धित है। इसे उन्होंने 'शातवाहन पर्व' कहा है। शातवाहनों के उदय से लेकर अन्त तक का इतिहास उसमें है। यों कह सकते हैं कि वे लोकवाङ्मय का उपयोग ऐतिहासिक क्रम में प्रस्तुत करते हैं। प्रथम भाग को शातवाहनों के इतिहास की भूमिका मानिए और दूसरे भाग को शातवाहनों का इतिहास समझिए। महाराष्ट्र की प्राचीन परम्परा को समझने में दोनों ही भाग बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

3

यहाँ यह भी लिख दूँ कि डॉ. रामविलास शर्मा ने भी महाभारत का ऐतिहासिक विश्लेषण अपने विशाल ग्रन्थ 'भारतीय संस्कृति और हिन्दी-प्रदेश' भाग-1 में किया है। वे महाभारत के आधार भारतीय इतिहास को प्रस्तुत करते हैं। उनके ग्रन्थ से कुछ टिप्पणियाँ प्रस्तुत करते हुए गुणादय की रचना का विश्लेषण करना चाहूँगा।

“किसी भी वीरकाव्य में दार्शनिक विचारों का ऐसा ताना-बाना आदि से अन्त तक नहीं फैला हुआ जैसा कि महाभारत में है। दार्शनिक विचारों के मोटे रूप से दो स्तर स्पष्ट हैं। एक प्राचीन स्तर है जहाँ ऋग्वेद और अथर्ववेद की प्रतिध्वनियाँ सुनाई देती हैं। जल, अग्नि, वायु आदि तत्त्वों की चर्चा, सृष्टि से इनका सम्बन्ध, विकासवादी धारणाएँ, ये सब ऋग्वेद की याद दिलाते हैं। काल के सम्बन्ध में अनेक पात्र जो कुछ कहते हैं, उसका पूर्व रूप अथर्ववेद में विद्यमान है। समरभूमि की रात्रि की भयानकता अथर्ववेद में रात्रि के वर्णन की याद दिलाती है। इसी तरह कवि ने जहाँ धरती से प्रेम प्रकट किया है और उसके लिए लड़नेवाले राजाओं की निन्दा की है, वह सब भी अथर्ववेद के प्रसिद्ध पृथिवी सूक्त के अनुरूप हैं।... . .... गण समाजों के विघटन के बाद एक बड़े राज्य की स्थापना का स्वप्न

कृष्ण का था और कौटिल्य का भी था। गण समाजों के विघटन का काल, इनकी संधि रेखा पर कृष्ण खड़े दिखाई देते हैं। उनकी राजनीति की मुख्य विशेषताएँ गण समाजों के युग में उत्पन्न हुईं पर वे प्रचलित गण धर्म और गणों के व्यवहार की विरोधी हैं, वे नए सामाजिक विकास की ओर संकेत करती हैं। सामंती व्यवस्था के अभ्युदय काल में कवियों का जैसा लोकवादी दर्शन है, वैसा ही उनका लोकसंग्रह वाला राजनीति शास्त्र है।<sup>1</sup>

डॉ. रामविलास शर्मा ने तीसरे अध्याय का शीर्षक दिया है **‘महाभारत : इतिहास, दर्शन और लोक-संस्कृति’**। शीर्षक के अनुसार उन्होंने इतिहास कहा है और माना भी है किन्तु इस इतिहास का विश्लेषण वे दर्शन और लोक-संस्कृति के रूप में अधिक करते हैं। वे महाभारत के स्वरूप को इतिहास के रूप में स्वीकार करते हैं और उसके यथार्थ का अंकन अधिक करते हैं। वे कहते हैं **‘द्रौपदी महाभारत की विराट भावशक्ति है।’<sup>2</sup>**

...‘कृष्ण महाभारत की अपराजेय कर्म शक्ति हैं।’<sup>3</sup> ...डॉ. रामविलास शर्मा वस्तुतः गण व्यवस्था के विघटन और उसके बाद सामंती व्यवस्था के अभ्युदय काल के स्वरूप को महाभारत में ऐतिहासिक रूप में परखते हैं।

#### 4

डॉ. रामविलास शर्मा से अलग केतकर महाभारत को भारतीय इतिहास के क्रम में रखते हुए, उसका काल निर्धारण करते हुए गुणादय को उस परम्परा से जोड़कर उसका विश्लेषण करते हैं। वस्तुतः वे पौराणिक सामग्री के भीतर से ऐतिहासिक तथ्यों को अलग करते हैं और उन तथ्यों को ऐतिहासिक क्रम में रखकर उनका मूल्यांकन करते जाते हैं।

केतकर ने अपना काल निर्णय भी दिया है। कुरुयुद्ध के बाद का कालनिर्णय वे बतलाते हैं। उनके अनुसार

(1) कुरुयुद्ध से उदयन तक का काल ई. पूर्व. 1500 से ई. पू. 800 है।

(2) उदयन के गौतमबुद्ध तक का काल ई. पूर्व. 800 से ई. पू. 550 है।

उनका मानना है कि सूतविद्या का पौराणिकों की ओर से संग्रह एवं पुराणरचना में तीर्थोपाध्याय धर्म का मिश्रण इसी काल में हुआ। अर्थात् इसे वे ई. पू. 1500 से ई. पू. 800 ई. के बीच मानते हैं। इसी काल में वेदों के शाखा विभाग हुए और चरण विभाग भी हुए। वैदिक धर्म की पौराणिक धर्म की संगति भी बैठाने का काम हुआ। इस काल में पेशाची भाषा और ईरानी लोगों का महत्त्व बढ़ता रहा है।

इसी तरह उदयन से गौतम बुद्ध तक के काल में अर्थात् 800 ई. पू. से 550 ई. पू. के काल में पाणिनि, वररुचि का अस्तित्व रहा है। पेशाची के महत्त्व का यह काल है। तक्षशिला और गांधार के सांस्कृतिक महत्त्व का यह काल है।

3. गौतम बुद्ध से नन्द के पतन तक का काल 550 ई. पू. से 325 ई. पू. तक का काल है। इस काल में पेशाची का महत्त्व समाप्त हो रहा था। पालि और अर्द्धमागधी के महत्त्व का यह काल है।<sup>4</sup>

#### 5

यहाँ मैं यह भी कहना चाहूँगा कि केतकर ने राजनीतिक इतिहास की संगति बैठाने हुए सामाजिक इतिहास भी लिखा है और इनके साथ-साथ भाषाओं का इतिहास भी लिखा है। उन्होंने माना है कि कुरु युद्ध से उदयन के काल तक पेशाची भाषा का महत्त्व था। ईरानी लोग इसी काल में प्रबल थे। यह महत्त्व उन्होंने ईरान का इतिहास लिखते हुए किया है। इसी तरह वे खरोष्ठी लिपि के सम्बन्ध में भी बतलाते हैं। पेशाची भाषा की रचनाएँ आरम्भ में खरोष्ठी लिपि में लिखी गई हैं। उनका कहना है कि “अत्यन्त प्राचीनकाल के शब्दों का अर्थ लगाने में संस्कृत व्याकरण को आधार मानना व्यर्थ का आग्रह है। मूल शब्द प्राकृत रहा है और उसी को किसी तरह संस्कृतीकरण करने के बाद वह हम तक पहुँचा है। इस बात का ध्यान रखना चाहिए।”<sup>5</sup>

#### 6

वस्तुतः केतकर शातवाहन काल का इतिहास लिख रहे थे। शातवाहन पर्व की मूल पीठिका प्रस्तुत करने के लिए उन्होंने प्रथम भाग लिखा। द्वितीय भाग शातवाहन पर्व ही है। भाग-1 में ही उन्होंने गुणादय की बृहत्कथा का उपयोग किया। प्रकरण 19 का शीर्षक है **‘बृहत्कथा की योग्यता’** इसके बाद प्रकरण 20 से 27 तक के सभी प्रकरण बृहत्कथा को आधार बनाकर लिखे गए हैं। मैं केवल प्रकरणों के शीर्षक नीचे लिख रहा हूँ

प्रकरण 20 : उदयन का दिग्विजय, महाराष्ट्र की उपेक्षा और पारसियों का पराभव

प्रकरण 21 : उदयन कालीन लोकस्थिति, औदयन राजव्यवहार और तद्विषयक विचार

प्रकरण 22 : उदयन काल और बौद्धकाल

प्रकरण 23 : प्राचीन अपरान्त

प्रकरण 24 : बृहत्कथा में रामायण का उपयोग और उससे प्रभावित सामाजिक इतिहास

प्रकरण 25 : रामायण और बाह्य संस्कृति का परिणाम

प्रकरण 26 : उदयन कालीन विश्व और उस विषय में बृहत्कथा के प्रमाण

प्रकरण 27 : विद्याधर संस्कृति और उनका खेल

यों कुल मिलाकर आठ प्रकरण पृ. 117 से पृ. 193 तक गुणाद्वय की बृहत्कथा को आधार बनाकर लिखे गए हैं। ये शीर्षक अपने आप में इतिहास को उजागर करनेवाले हैं।

## 7

कुरुवंश की पीढ़ियों में उदयन का जन्म हुआ है। महाभारत के राजा परीक्षित के बाद जनमेजय, उसके बाद शतानीक, शतानीक के बाद सहस्रानीक और सहस्रानीक के बाद उदयन का नाम है। बृहत्कथा सागर में कथाओं का आरम्भ सहस्रानीक से होता है। वत्स देश के कौशाम्बी में शतानीक राजा था। उसके पुत्र का नाम सहस्रानीक था। और फिर उदयन राजा हुआ। पुराणों की वंशावली में 25 से अधिक पीढ़ियों के नाम मिलते हैं।

उदयन पांडवों का वंशज है और वह कुरुक्षेत्र छोड़कर कौशाम्बी आकर रह गया था। हस्तिनापुर छोड़ने का जो कारण रहा हो, वह कारण बृहत्कथा में नहीं है। उदयन का सहायक उसका मंत्री यौगंधरायण रहा है। उसी ने उदयन की महत्वाकांक्षाएँ पूर्ण की हैं। उसके लिए उसने उन राजकन्याओं से उसका विवाह निश्चित किया जिसमें उदयन स्वयं प्रसन्न रहता था और दूसरी बात उसके राजनीतिक लाभ भी मिलना संभव था। दिग्विजय में भी वह सहायक था। इसीलिए उदयन के साथ-साथ यौगंधरायण का नाम भी प्रसिद्ध हुआ है। राजदरबारों में ऐतिहासिक जानकारी देनेवाली रचनाएँ लिखी गई हैं और उसे व्यावहारिक साहित्य कहना उपयुक्त होगा। राजा को दिग्विजय की यात्रा के लिए प्रेरित किया गया। राजा ने विदेह देश का राज्य गोपालक को दिया। पद्मावती का भाई सिंह वर्मा सेना सहित उसकी सहायता के लिए तैयार हुआ। यौगंधरायण ने सारे राजनीतिक प्रयास किए। वाराणसी में ब्रह्मदत्त राजा था, उसके लिए कूटनीतिक योजना बनाई। अपने गुप्तचर वहाँ भेजे। ब्रह्मदत्त पर विजय प्राप्त कर ली। उज्जयिनी राजा की ससुराल थी। पूर्व और बंग देश को जीता। बाद में कलिंग देश की ओर बढ़ता गया। दक्षिण की विजय यात्रा भी लम्बी है। कावेरी तक उसका अभियान जारी रहा है। चोल राजा तक पहुँचा। गोदावरी नदी का पानी पीते हुए उसकी सेना लौट आई। बाद में रेवा नदी को पार कर उज्जयिनी को लौट आया। चण्डमहासेन का पुरस्कार लेकर वह लौटा था। उसकी यात्रा के वर्णन के मार्ग बृहत्कथा सागर में हैं। कावेरी को पार करने के बाद और चोलों का पराभव करते हुए उसे मैसूर के रास्ते से लौटना चाहिए था। वैसा होता तो उसे कर्नाटक और उसके बाद महाराष्ट्र से गुजरात से गुजरना चाहिए था किन्तु वैसे न कर वह समुद्र के मार्ग से लौट आया। गोदावरी के मुख त्र्यंबकेश्वर की ओर से न लौट कर किनारे-किनारे ही लौट

गया और सीधे मालवा की ओर लौट गया। ऐसा क्यों हुआ? इस पर केतकर आश्चर्य व्यक्त करते हैं और अनुमान करते हैं कि वहाँ के राजा प्रबल होंगे। अतः वह दूर-दूर से लौट गया। मलय देश, कर्नाटक और महाराष्ट्र इन तीनों प्रदेशों को छोड़कर ही वह लौटता है। लगता है, उस समय के राजा प्रबल थे। सम्भावना इस बात की भी है कि वहाँ कोई विशेष राजा न हो। क्योंकि यह गौतम बुद्ध के पूर्व का काल है। उसके समय में प्रतिष्ठान में राजा थे और उन राजाओं का उल्लेख केतकर ने किया है। उज्जयिनी में विश्राम लेने के बाद वहाँ से आगे पश्चिम की यात्रा उसने की है। उसके साथ ससुर की सेना भी थी। सेना में हाथियों की संख्या अधिक थी। गुजरात के बाद, कुंवर तिलका, अलका संग संशिनी और कैलासहास सुभगा की ओर बढ़ता गया। दिशासूचक ये नाम हैं। बाद में सिन्धु राजा को परास्त किया। उसने तुर्की घोड़ों का संहार किया। उसके हाथी प्रबल थे। सिन्धु नदी को पार कर पारसियों के राजा को परास्त किया। लेखन में अतिशयोक्ति होने पर भी यात्रा में नामोल्लेख और उसके अभियानों में ऐतिहासिक सत्य भी है।

केतकर ने ऐतिहासिक निष्कर्ष दिए हैं

“बृहत्कथा की सारी कथाएँ नरवाहनदत्त और उदयन के पूर्व की हैं, ऐसा कहना सम्भव नहीं है उसे उदयनपूर्व, उदयनकालीन और उदयनोत्तर की कथाएँ कहना अधिक ठीक है। इन कथाओं में प्रक्षिप्त भाग भी है। उनको अलगाना कठिन है किन्तु स्थूल तथ्य तो उदयन और नरवाहनदत्त के काल के है। इन तथ्यों को स्वीकार करना होगा। प्रतिष्ठान के राजा नरसिंह और त्रिविक्रमसेन का काल उदयन के काल से आगे-पीछे पहचानना होगा। उदयन के काल को पहचानने में दारयवहू और पौराणिक ईरानी राजाओं को इसी सन्दर्भ में पहचानना होगा। दारयवहू के पहले की ईरानी लोगों की स्थिति को जानना होगा।”<sup>6</sup>

## 8

उदयन गौतम बुद्ध से 200 से 276 वर्ष पहले रहा है। एतदर्थ उन्होंने अनेक जैन और बौद्ध कथाओं की राजावलियों की परीक्षा की है और माना है कि गौतम बुद्ध से पहले 250 वर्ष निष्कर्ष रूप में मान लें तो उदयन का काल ई. पू. 800 वर्ष निश्चित होता है।<sup>7</sup>

## 9

प्रकरण 24 और 25 का सम्बन्ध वाल्मीकि रामायण को आधार मानकर लिखे गए हैं। इनमें बृहत्कथा का उपयोग भी है। रामकथा के विकास को दिखलाया गया है। उत्तर काण्ड की कथाओं की मीमांसा अधिक है। ये काण्ड प्रक्षिप्त लगते हैं किन्तु उनके विस्तार में दक्षिण भारत और पश्चिमोत्तर भारत भी है। इस सबके विस्तार में बृहत्कथा

## 10

बृहत्कथा में जो भौगोलिक नाम मिलते हैं और उनमें द्वीपों के नाम भी हैं, वे नाम केतकर ने अकारादिक्रम से दिए हैं। उन नामों की पहचान का प्रयत्न उन्होंने किया है। प्रत्येक नाम का परिचय अलग-अलग दिया है। मैं केवल नाम मात्र दे रहा हूँ

अनंगपुर □ अयोध्या □ अलका नगरी □ अवंति देश □ अहिच्छत्र नगर □ इक्षुमती नगरी □ उज्जयिनी □ उत्स्थल द्वीप □ उदयगिरि □ ऋषभ पर्वत □ एकलधा नगरी □ ऐरावती नगरी □ अंगदेश □ अंतर्वेदी □ कच्छ देश □ कटाह द्वीप □ कर्नाटक □ कनकपुर □ कनकपुरी □ कनक क्षेत्र □ कनखल तीर्थ □ कमलपुर □ करजशपुर □ कर्कोटक नगर □ कर्पूर द्वीप □ कर्पूरसंभवपुर □ कलापग्राम □ कलिंग देश □ कांचनपुर □ कांची □ कांपित्य देश □ कान्यकुब्ज □ कामदिका □ काश्मीर □ कीचक वन □ कुंडिनपुर □ कुसुमपुर □ कोंकण देश □ कोसल देश □ कोट्ट □ कौतुकपुर □ कोशास्वी □ कम्बुकपुर □ गोकर्णपुर □ चिचिनी □ चित्रकूट □ चिरपुर □ चिरायु □ चीन □ चेदि □ तक्षशिला □ ताम्रलिप्ती □ तिमिरा □ त्रिघंटा □ तुरुष्क राज्य □ द्वारका □ नाग स्थल □ निषध □ नेपाल □ नंदि क्षेत्र □ पद्माख्य □ पाटलिपुत्र □ पुष्करावती □ पौण्ड्रवर्धन □ प्रतिष्ठान □ प्रयाग □ बदरिकाश्रम □ बहुसुवर्णक ग्राम □ मडव क्षेत्र □ मथुरा □ मथुरा □ मद्रदेश □ महाराष्ट्र □ मधुपुरा □ मध्य देश □ मालव देश □ मुक्तापुर □ यज्ञस्थल □ रत्नकूट द्वीप □ रत्नपुर □ राठा □ लक्षपुर □ लाट □ लंका □ वक्तालोक □ वज्रसार □ वत्सदेश □ वर्धमानपुर □ वलभी नगरी □ वसुदत्तपुर □ वाराणसी □ वाराह क्षेत्र □ विद्याधरों के राष्ट्र □ विजय क्षेत्र □ विंध्याद्रि □ वीरपुर □ वेतस □ शशांकपुर □ शोभावती □ श्रावस्ती □ श्रीकंठ देश □ शूरपुर □ सागरपुर □ सिंहल द्वीप □ सुरपुर □ सुवर्ण द्वीप □ हर्षपुर □ हिरण्यपुर □ हंस द्वीप □ हर्षवती □ हस्तिनापुर □<sup>8</sup>

ये सब प्रकरण 26 में दिए गए हैं। इन नामों के आधार पर पृ. 186 पर उन्होंने नक्शा तो नहीं दिया किन्तु कुरुयुद्ध में भाग लेनेवालों के नामों की भौगोलिक पहचान बतलानेवाले स्थानों के आधार पर नक्शा पागिटिर को आधार मानकर दिया है। इससे भारत भूमि की पहचान महाभारत की परम्परा में कथासरित्सागर को पहचाना जा सकेगा। कथासरित्सागर में दक्षिण भारत का परिचय बहुत अल्प है। ये सब गौतम बुद्ध के पहले के भारत के स्वरूप को पहचानने में सहायक हैं। साथ ही भगवान महावीर के पहले का इतिहास है। जैनधर्म का उल्लेख भगवान महावीर से पहले का मिलता है। वे सब हैं। जैनधर्म के कथानक मिलते हैं।

## 11

**विद्याधर एवं मग** कथासरित्सागर में विद्याधरों को प्रधानता दी गई है। वे मानवेतर श्रेणियों के हैं। मनुष्य के ऊपर उठे हुए और विशेष-विशेष गुणों से युक्त हैं। इनके कारण जो संघर्ष हुए हैं, उन संघर्षों का विवरण कथानकों में विस्तार पा गया है। विद्याधरों के स्वतन्त्र राज्य हैं। ये हिमालय के प्रदेशों में हैं और कुछ मध्यप्रदेश के वन कान्तारों में हैं। यहाँ यह दोहरा दूँ कि उदयन और उसके बाद नरवाहनदत्त जो प्रधान नायक हैं, वे दोनों ही अपनी योजनाओं के बल पर या उनसे सिद्धियाँ प्राप्त करके सफलता प्राप्त करते जाते हैं उनकी लम्बी-लम्बी यात्राएँ विद्याधरों के बल पर सफल होती हैं। विद्याधर कन्याओं से नरवाहनदत्त का विवाह होता है। यों नरवाहनदत्त को विद्याधरों ने जगह-जगह बचाया है। भविष्यवाणी थी कि वह विद्याधरों का भावी राजा होगा। भारत में उस समय उज्जयिनी और कोशास्वी केन्द्र थे। उनको हस्तिनापुर और मथुरा से अलग कर दिया गया है। लगता है, सारे सूत्र मध्य प्रदेश से चलते हैं और उनका प्रभाव चारों दिशाओं में है। विद्याधरों को शिवजी के कारण महत्त्व प्राप्त हुआ है। इनके स्वतन्त्र संघर्ष भी हैं। इस तरह मनुष्य और विद्याधर दोनों एक-दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं और इनमें प्रबल विद्याधर ही हैं। विद्याधरों की भाषा वैशाची रही है, ऐसी मान्यता है। ये सारी कथाएँ लौकिक हैं और इनमें लोक व्यवहार से सम्बद्ध हैं। ऐसी स्थिति में इनको इतिहास माना जाए या नहीं? यह प्रश्न है? इन प्रश्नों से परिचित होते हुए भी केतकर ने कथासरित्सागर में भारतीय इतिहास की खोज की है। और जो कुछ उन्होंने ऐतिहासिक निष्कर्ष निकाले हैं, उनका सामान्य संकेत मैंने ऊपर दिया है।

## 12

मग और मागध का परिचय विशेष देवयेनि में नहीं है अपितु ऐतिहासिक रूप में अधिक है। मग भारत में क्यों उपेक्षित रहे? विहार में ये क्यों बसे और वहाँ से उत्तर-पश्चिम में किस तरह पहुँचे होंगे? उनके स्वतन्त्र राज्य हैं। एक समय में वे राजनीतिक रूप में प्रबल थे। महाभारत में जरासंध मग था। उस समय में पूर्व में ये प्रबल थे। जरासंध की तरह कंस भी मग था और इनका संहार करना स्वयं कृष्ण भी चाहते थे। कृष्ण ने तो स्वयं कंस का वध किया था। बाद में ये मग उत्तर-पश्चिम में ईरान तक पहुँचे थे। वहाँ भी इनका राज्य स्थापित हुआ है। मग लोग भौतिक रूप से अधिक सम्पन्न और अनेक कलाओं से परिचित थे और उनकी वैज्ञानिक प्रगति को देखकर आश्चर्य होता है। महाभारत में मग दानव-मगों में से ही है। उसी ने पाण्डवों का भवन बनवाया था। इन मगों को मगध में वास करने के कारण और प्रबल होने के कारण ही देश या प्रदेश का नाम मगध हुआ। मगध के निवासियों को मागध कहा

गया और इनकी भाषा मागधी हुई। आर्यों से इनको अलगाया गया है किन्तु इनकी सामाजिक स्थिति में समय-समय पर अन्तर आता गया है।

### 13

विद्याधरों के सम्बन्ध में केतकर ने अलग से विस्तार से लिखा है। विद्याधरों का सम्बन्ध जैनों से माना गया है। ये विद्याधर भारत के सीमांत प्रदेशों से अधिक सम्बन्ध रखते थे और विंध्याचल पर्वत के आसपास भी इनके आवास को बतलाया जाता है। इसी तरह मगों के सम्बन्ध में केतकर ने विस्तार से लिखा है। उस विस्तार में न जाते हुए मैं कुछ अनुच्छेद विद्याधरों और मगों के सम्बन्ध में प्रस्तुत कर रहा हूँ

“जैनियों के प्राचीन ग्रंथों में विद्याधरों का विस्तृत परिचय मिलता है। उन्हें देवयोनि से जोड़ा गया है। ऋषभदेव तीर्थकर किसी पूर्व जन्म में विद्याधर थे। तीर्थकर के विद्याधर के जन्म का नाम ‘रातबस’ था। हेमचन्द्र ने लिखा है कि महाबल ने बलवान विद्याधर के सहयोग से पृथ्वी पर राज्य किया है। उसकी आज्ञा का पालन सब करते थे। वैताद्वय पर्वत पर वह रहता था। उसके आगे-पीछे स्त्रियाँ रहती थीं। उनके साथ वह उद्यानों में विहरता रहता था। वह मूर्त कामदेव था...इस तरह का वर्णन हेमचन्द्र ने त्रिषष्टिशलाका के आधार पर किया है।...विद्याधरों का सम्बन्ध विंध्य पर्वत से भी जोड़ा गया है। नमि और विनमि दोनों विद्याधरों ने विद्याधर नगरों का निर्माण किया। भरत के दिग्विजय की तरह उदयन के दिग्विजय को कथासरित्सागर में दिखलाया गया है।”

और भी

विद्याधर और पिशाच दोनों भिन्न योनियाँ हैं। गंधर्वों से भी उनको अलगाया गया है।

कहा है

विद्याधरास्तु विद्याध्राः कामरूपाः कलाविदः।

जीमूतवाहनाद्यास्ते गंधर्वेभ्योऽवराः स्मृताः॥

(केशवकृत कल्पद्रुमकोश, पृ. 372)

विद्याधर रूप बदलने में चतुर थे। विद्याधरों से पिशाच भिन्न थे। उन्हें दुष्ट योनि का माना गया है। उनको दिए गए विशेषणों में उनसे निष्पन्न और जातियों को रखा गया है

सूमाख्या वानरास्याश्च पिशाचा नाम ते गणाः

दुष्पूरणा विशादाश्च ज्वलना कुंभमात्र काः

उनके अन्य रूपों का भी वर्णन नाट्यशास्त्र में मिलता है।”<sup>9</sup>

### 14

विद्याधरों की भाषा पैशाची थी क्या? वह होगी, इस प्रकार के उल्लेख नाट्य-वेद पण्डित कहते हैं? केतकर का अनुमान है कि ईरानी लोगों में जो उच्चवर्ग रहा है, वे ही विद्याधरों के रूप में प्रसिद्ध हुए हैं और उनकी सेनाओं में जो अन्य लोग थे, वे पिशाच थे। पिशाचों की भाषा पैशाची थी। किन्तु जब पैशाची का महत्त्व बढ़ा तो फिर पिशाचों की जाति को भी मान्यता मिली। वह देश भाषा थी क्या? उसे देश भाषा मानना होगा। विद्याधरों के सहायक यदि पिशाच थे तो विद्याधरों का व्यवहार पैशाची भाषा में होता था। अनुमान किया जा सकता है कि वेद पण्डितों ने संस्कृत भाषा विद्याधरों से कहलवाई है किन्तु वस्तुतः वे पैशाची जानते थे और उनकी भाषा पैशाची थी।<sup>10</sup>

### 15

‘मगों का भारतीय इतिहास’ प्रकरण 28वें में पृ. 195 से 206 में है। मगों की संस्कृति को विदेशियों का और विशेष रूप से ईरानी लोगों का परिणाम कहा है। मगध से लोग ईरान गए या ईरान से पूर्व की ओर ये आए इस सम्बन्ध में विचार करने की आवश्यकता है। इतना तो निश्चित है कि ये लोग पूर्व में आबाद थे। महाभारत से पहले ये लोग विद्यमान थे। इनका प्राचीन नाम कीकट बतलाया गया है। वैदिक काल में ये विद्यमान थे और इन्हें वेदविरोधी कहा गया है। किन्तु बाद में वे भी वैदिक संस्कृति के अन्तर्गत मान लिए गए। इनकी आबादी पूर्व की ओर होने के कारण बंगाल की खाड़ी से ये लोग भारत में आए हों, ऐसा अनुमान है। शकों का आगमन मगों के बाद में है। मगधवासियों को समाज में अधिक प्रतिष्ठा मिली नहीं। इनको मिश्र जाति का समझा जाता है। मागध और ब्रात्य दोनों ही भाई-भाई माने जाते हैं। मगों का सम्बन्ध भोजकों से भी बतलाया गया है।<sup>11</sup>

### 16

मगध की भाषा मागधी है और वह पूर्व में है और पश्चिम में पैशाची है। इन दोनों में मागधी को मूलधारा में जोड़ा गया है। मागधी में अशोक के समय अभिलेख लिखे गए हैं किन्तु मागधी से जुड़े अन्य रूपों में साहित्य अधिक मिलता है। मागधी, प्राकृत की मूल धारा में सम्मिलित है किन्तु पैशाची को वह स्थान मिला नहीं है। पैशाची को प्राकृतों में बाद में सम्मिलित किया गया है किन्तु उनका अलगाव बना रहा है। मगध के निवासी बाद में स्तुतिगायक हो गए। राजाओं से उन्होंने मेल किया और उनके दरबारों में रहे। उनके अलगाव को धीरे-धीरे कम किया गया है। मागधी भाषा को गौतम बुद्ध ने अपनाया और वह बाद में सिंहल देश में पहुँची। उसी का नाम धार्मिक

भाषा के रूप में 'पालि' हुआ है।

17

बृहत्कथा का मूल रूप तो उपलब्ध है किन्तु उसमें कथासरित्सागर तक कितना परिवर्तन हुआ? यह अनुमान का विषय है। मूल पैशाची का वह संस्कृत में अनुवाद है, ऐसा कहना कठिन है किन्तु इतना तो सच है कि मूल रचना में, प्रयोजनों में परिवर्तन हुआ है। पश्चिम की भाषा होने पर भीमथुरा ही नहीं, विंध्य प्रदेश तक उसका विस्तार हो गया था। उदयन के काल में और नरवाहनदत्त के काल तक वह विंध्याचल पर्वत के आसपास की भाषा हो गई थी। पैशाची के उत्तर में शौरसेनी थी किन्तु यह नामकरण बाद का है। पैशाची में गुणाढ्य ने बृहत्कथा लिखी है, उसका सम्बन्ध मध्यदेश से है। उदयन और नरवाहनदत्त की कथाएँ गौतम बुद्ध के पहले लिखी गई हैं। भगवान महावीर के पहले की हैं। दोनों का ही उल्लेख कथासरित्सागर में नहीं है। ये कथा ऐसी हैं, जिनमें वैदिक संस्कृति से इनका अलगाव स्पष्ट होता है। संस्कृत के परिवर्तित रूपों में भी यह अलगाव पहचाना जा सकता है। यद्यपि इन कथाओं में शिवजी का उल्लेख सर्वशक्तिमान के रूप में हुआ है। शिवजी के गण बलवान हैं। विद्याधर भी शिवजी की कृपा के पात्र हैं। वेदविरोधी जितनी जातियाँ और वर्ग हैं, उन सब में शिवजी की मान्यता अधिक है। कैलास में शिवजी के वास का उल्लेख कथासरित्सागर में है। विद्याधर सीधे शिवजी से जुड़े हुए हैं। उनके राज्य अलग हैं। मनुष्य को वे अलग पहचान लेते हैं। विद्याधर सारी दैवी शक्तियों से युक्त दिखलाए गए हैं। पूर्वजन्मों की कथाएँ भी कथासरित्सागर में हैं। ये कथाएँ भारत के बृहत् रूप से जुड़ी हुई हैं। अनेक द्वीपों की यात्राओं के विवरण हैं। व्यापारी लोग जहाजों में माल लादकर द्वीपों तक पहुँचते हैं। वहाँ पर व्यवसाय करते हैं। धन को उपलब्ध करते हैं और लौट आते हैं। उनका अधिकार आकाश में भी है। विद्याधरों की हवाई यात्राओं के विवरण मिलते हैं। वेद विरोधी अनेक जातियों के विवरण हैं। चमत्कारिक कथाएँ भी हैं। पशुओं के और प्राणियों को मानवीय रूप में दिखलाया गया है। श्मशानों का वर्णन है। शिवजी के गणों को वहाँ उपस्थित दिखलाया गया है। बैताल पच्चीसी की कथाएँ भी इनमें जोड़ी गई हैं। पंचतन्त्र की कथाएँ भी हैं। ये सब अलग से पहचाने जा सकते हैं। इनको लोककथाओं के रूप में भी पहचाना गया है। ऐसे कथासरित्सागर में इतिहास की खोज करना कठिन कार्य है। इससे महाभारत का ऐतिहासिक स्वरूप अधिक स्पष्ट है। किन्तु केतकर ने यह कठिन काम किया है।

18

लोक वाङ्मय के रूप में दुर्गा भागवत ने कथासरित्सागर का विवेचन किया है। केतकर

ने भी लोक वाङ्मय के रूप में इसे परखा है किन्तु उसमें सामाजिक विश्लेषण अधिक हो गया और फिर वे इतिहास के रूप में ही परखने का प्रयत्न अधिक करते हैं। दुर्गा भागवत ने विश्व की प्राचीन कथाओं से इन कथाओं की तुलना की है और विदेशी विद्वानों ने इसका जो विश्लेषण किया है, उनके विचारों को भी बतलाया है। पाँचों भागों के आरम्भ में भूमिकाएँ लिखी हैं और अन्त में टिप्पणियाँ सन्दर्भों को स्पष्ट करने के लिए दी हैं। केतकर पहले समाजशास्त्री हैं और बाद में इतिहासकार। उनके इतिहास का आधारसमाज है। सामाजिक व्यवस्था को वे पहले पहचानते हैं और निष्कर्षों के आधार पर उन्हें ऐतिहासिक रूप देते हैं। उनका इतिहास मात्र इतिहास नहीं है, उसके साथ-साथ समाज, भाषा और संस्कृति भी हैं। वे ऐतिहासिक परम्परा में रचना को परखते हैं। उदयन की ऐतिहासिक पहचान के लिए उदयन के पूर्व के वृत्त को और उदयन के बाद के वृत्त को रखकर वे ऐतिहासिक मूल्यांकन करते हैं। उदयन के काल की भाषाओं का विवरण भी उन्होंने दिया है। पैशाची के सम्बन्ध में अधिक जानकारी केतकर ने ही दी है और फिर गुणाढ्य की बृहत्कथा, कथाओं का संकलन होने पर भी उनका लेखन एक व्यक्ति का है। कथाओं के विविध स्रोत हैं। उनकी पहचान पूरी तरह नहीं हुई है। ऐसी पहचान का प्रयत्न दुर्गा भागवत ने किया है।

19

**कथासरित्सागर का स्वरूप :** दुर्गा भागवत ने मराठी में प्रकाशित कथासरित्सागर (1980 ई.) के पाँचों भागों में प्रस्तावनाएँ लिखी हैं। प्रथम भाग की प्रस्तावना पृ. 62 की है और वह सबसे बड़ी है। यह प्रस्तावना 16-4-1979 को लिख ली गई और छपी 1980 ई. में है। प्रथम भाग में पाँच लम्बक हैं। **कथापीठ लम्बक** (आठ तरंगों में); 2. **कथामुख लम्बक** (6 तरंगों में); 3. **लावाणक लम्बक** (6 तरंगों में); 4. **नरवाहनदत्त का जन्म-लम्बक** (3 तरंगों में); और 5. **चतुर्दारिका लम्बक** (3 तरंगों में)। टिप्पणी और परिशिष्ट अंत में है। यों प्रथम भाग अनुक्रम सूची के साथ 454 पृष्ठों का है।

20

**दूसरे भाग में** प्रस्तावना के साथ तीन लम्बक6. **मदनमंच का लम्बक** (6 तरंगों में); 7. **रत्नप्रभा लम्बक** (9 तरंगों में); 8. **सूर्यप्रभ लम्बक** (सात तरंगों में) प्रस्तावना, टिप्पणी, परिशिष्ट और अनुक्रम सूची के साथ यह भाग 468 पृष्ठों का है।

21

**तीसरा भाग** इसी क्रम में नौ से 11 लम्बकों तक है। 9. **अलंकारवती लम्बक**

(6 तरंगों में); 10. **शक्तियशा लम्बक** (9 तरंगों में) और ग्यारहवाँ **वेला लम्बक** है। उसी क्रम में प्रस्तावना आदि के साथ वह 373 पृष्ठों का है।

## 22

**चौथा भाग** मात्र 12वाँ **शशांकवती लम्बक** का है। आठ तरंगों का है। इसके बाद बैताल पच्चीसी की पच्चीस कथाएँ हैं। इसमें सबसे अधिक तरंगों (कुल 36 तरंगों) हैं। इन 36 तरंगों में बैताल पच्चीसी की कथाएँ भी सम्मिलित हैं। परिशिष्ट में बैताल पच्चीसी का परिचय और कथाओं की मीमांसा दुर्गा भागवत ने की है। आरम्भ की प्रस्तावना और परिशिष्ट तथा अनुक्रम सूची के साथ यह भाग 452 पृष्ठों का है।

## 23

**पाँचवें भाग** में अन्तिम 5 लम्बक (13 से 18) हैं। वे हैं 13. **मदिरावती लम्बक** (एक तरंग), 14. **पंच लम्बक** (4 तरंग); 15. **महाभिषेक लम्बक** (दो तरंग); 16. **सुरत मंजरी लम्बक** (तीन तरंग); 17. **पद्मावती लम्बक** (6 तरंगों में) और अन्तिम 18. **विषमशील लम्बक** (पाँच तरंगों में)। अन्त में परिशिष्ट और अनुक्रम सूची है। यह भाग 354 पृष्ठों का है।

## 24

पाँचों भागों का संक्षेप में अनुक्रम दिया है। केवल लम्बकों के शीर्षक दिए हैं। तरंगों के शीर्षक नहीं दिए। गुणाद्वय कौन था? इसका उल्लेख (परिचय) प्रथम भाग के, प्रथम लम्बक में, आठ तरंगों में ग्यारहवीं शताब्दी में सोमदेव ने दिया है। सोमदेव कश्मीर के राजा के दरबार में था। राजा का नाम अनन्त था। उसकी रानी सूर्यवती को रिझाने के लिए पैशाची भाषा में उस काल में उपलब्ध बृहत्कथा का संस्कृत रूपान्तर कथासरित्सागर में किया गया है। दुर्गा भागवत का कहना है कि सोमदेव का कथासरित्सागरबृहत्कथा के विकास का अन्तिम रूप है। यह कश्मीरी रूप है और इसमें सोमदेव ने अपनी इच्छानुसार परिवर्तन किया है। गुणाद्वय और सोमदेव के बीच में ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से (गुणाद्वय के समय से, ग्यारहवीं शताब्दी तक) सोमदेव के समय तक बृहत्कथा के अनेक रूप मिलते हैं। उन सब रूपों का परिचय दुर्गा भागवत ने दिया है। स्वयं गुणाद्वय अपना परिचय विस्तार से नहीं लिख सकता था। गुणाद्वय का परिचय सोमदेव ने अपने रूपान्तर में प्रथम लम्बक में दिया है। गुणाद्वय का परिचय उसी आधार पर लिख रहा हूँ

## 25

**गुणाद्वय:** मंगलाचरण में शिवजी और पार्वती की स्तुति है। दोनों का संवाद है पार्वती के पूर्व जन्म की कथा पार्वती के शाप और उःशाप (प्रथम तरंग समाप्त)। दूसरे तरंग में **वररुचि** की कथा है।

**वररुचि :** वररुचि मानव था। वह पहले पुष्पदन्त था। कात्यायन के नाम से भी वह प्रसिद्ध रहा है। नन्द का वह मन्त्री था। एक बार वह विंध्यवासिनी देवी के दर्शन हेतु गया। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर देवी ने उसे स्वप्न में आदेश दिया कि विंध्यारण्य में जाकर काणभूति से मिले। तदनुसार वह काणभूति से मिला। वहाँ उसने देखा कि काणभूति वटवृक्ष के पास सैकड़ों पिशाचों से घिरा हुआ बैठा है। वह शालवृक्ष के समान ऊँचा लग रहा था। काणभूति ने कात्यायन को देखा। उसको बैठने के लिए आसन दिया। उसने काणभूति से पूछा तुम्हारी सदाचारी होने पर भी, ऐसी स्थिति क्यों हुई...दुर्गति क्यों? उसके स्नेहपूर्ण वचनों को सुनकर काणभूति ने कहा मैं कैसे इस स्थिति में पहुँचा, इसका मुझे ज्ञान नहीं फिर भी श्री शंकर की ओर से मैंने जो सुना है, वह तुम्हें कह रहा हूँ इसके बाद उसने सृष्टि के निर्माण की कथा सुनाई। बाद में जब पार्वती (गौरी) ने शिवजी से पूछा कि हमारा गण पुष्पदन्त आपके पास कब लौटकर आएगा। तब महेश्वर बोले यह जो पिशाच दिखलाई देता है, वह कुबेर का अनुचर यक्ष है। एक बार उसने स्थूल शिरा राक्षस से मैत्री की। यह देखकर कुबेर को क्रोध आ गया। उसने शाप दिया 'विंध्य-अरण्य में जाकर पिशाच हो जाओ।' किन्तु उसके बड़े भाई ने कुबेर के चरण पकड़ लिए और उःशाप के लिए (शाप मुक्ति हेतु) विनती की। तब धनपति कुबेर बोले जब शाप के कारण पृथ्वी पर पहुँचे हुए पुष्पदन्त द्वारा वह इस महाकथा को सुनेगा और मानवयोनि में जन्मे माल्यवान से कहेगा, उस समय श्री शंकर के गणों के साथ इसकी भी शाप मुक्ति होगी। हे प्रिये, काणभूति से मिलने के बाद पुष्पदन्त भी शाप मुक्त होगा।...इतना कहकर काणभूति रुक गया। उसी समय वररुचि भी जाग गया और उसे अपने पूर्वरूप का जन्म कास्मरण हो गया। वह काणभूति से बोला मैं वही पुष्पदन्त हूँ। विद्याधर की कथा अब तुम मुझसे सुनो। ऐसा कहकर कात्यायन (वररुचि) ने सात लाख श्लोक वाली उन सात महाकथाओं को कहकर सुनाया। उसे सुनने के बाद काणभूति ने कहा तू तो रुद्र का साक्षात् अवतार है क्योंकि इस कथा को दूसरा कौन जान सकेगा? तुम्हारी कृपा से मैं शाप मुक्त हो गया। अब मुझे अपने जन्म की पूर्वकथा सुनाओ। आपने जन्म की पूर्व कथा उसने सुनाई। उस कथा में व्याडी की कथा और वर्ष तथा उपवर्ष का वृत्त भी है। यहाँ दूसरा तरंग समाप्त होता है। तीसरे तरंग में पाटलिपुत्र नगर के निर्माण की कथा है। बाद में राजा ब्रह्मदत्त की कथा है। यहाँ तीसरा तरंग समाप्त होता है। चौथे तरंग में उपकोश की कथा है। उसके बाद **पाणिनि की कथा** है। और भी कथाएँ हैं और वे सब मगध के पाटलिपुत्र से सम्बन्धित हैं। उसमें शकटाल भी है। पाँचवें तरंग में वररुचि बाद की कथा सुनाता है। उस समय योगानन्द राजा था। सुन्दर कौन है?

की कथा है। फिर चाणक्य की कथा है। फिर वह चुप हो जाता है और सुझाव देता है कि जब तक गुणादय ब्राह्मण तुझे नहीं मिलता तब तक तुम यहीं पर रहो। वह अपने शिष्यों के साथ यहाँ आया। वह शंकर का गण माल्यवान है। श्री शंकर ने मेरा पक्ष लिया था इसलिए पार्वती ने उसे शाप दिया। श्री शंकर की सुनाई हुई कथा ही मैंने यथावत् सुनाई है। उसे तू गुणादय से कहना। तब तुम दोनों शाप मुक्त हो जाओगे। बाद में काणभूति गुणादय की भेंट की प्रतीक्षा करने लगा। (पाँचवाँ तरंग समाप्त)। श्री शंकर के माल्यवान गण ने गुणादय के नाम से जन्म लिया। एक बार वह वन में भटक रहा था। उसने सातवाहन राजा की सेवा की थी। उसके सामने उसने प्रतिज्ञा की कि संस्कृत आदि तीन भाषाओं का त्याग कर देगा। बाद में वह विंध्यवासिनी देवी के दर्शन हेतु गया। वहाँ पर देवी की आज्ञा के अनुसार काणभूति से मिला। उससे मिलते ही अचानक उसे अपने पूर्व जन्म का स्मरण हो गया। संस्कृत, प्राकृत और देशी भाषा तीनों भाषाओं का त्याग करके **पैशाची भाषा** में अपना नाम बतलाकर कहने लगा। 'मित्र, काणभूति, पुष्पदंत से सुनी हुई कथा मुझे शीघ्र सुना जिससे हम दोनों शाप से मुक्त हो जाएँगे।' उसके बाद काणभूति ने कहा, 'गुणादय, मैं तो तुम्हें कथा सुनाऊँगा, परन्तु उससे पूर्व तुम अपनी कथा सुनाओ। तुम अपने जन्म से पूर्व की कथा सुनाओ।'

**गुणादय की कथा :** प्रतिष्ठान नगर में, सोम शर्मा एक श्रेष्ठ ब्राह्मण रहता था। उसे **वत्स** और **गुल्मक** नाम के दो पुत्र और **श्रुतार्था** नाम की तीसरी कन्या थी। ब्राह्मण और उसकी पत्नी दिवंगत हो गए। वत्स और गुल्मक अपनी बहन श्रुतार्था के साथ रहने लगे। अचानक दोनों भाइयों ने देखा कि श्रुतार्था गर्भवती है। दोनों भाइयों को एक दूसरे के प्रति शंका हुई। श्रुतार्था दूसरों के मन की भावनाओं को समझती थी। स्वयं उसने शंका के समाधान हेतु कहामेरे सम्बन्ध में पाप शंका न लें। जो कुछ घटित हुआ, वह मैं तुम्हें सुनाती हूँ। नागराज वासुकि का भतीजा कुमार कीर्त्तिसेन ने, जब मैं स्नान को गई, तो मुझे देख लिया। मुझे देखते ही वह मुझ पर मोहित हो गया। उसने मुझे अपना नाम और वंश बतलाया और गान्धर्व विधि से विवाह कर लिया। अतः मेरा यह गर्भ ब्राह्मण जाति का ही है। उसके दोनों भाइयों ने पूछा 'इसके लिए प्रमाण क्या है?' तब श्रुतार्था ने उस नागकुमार का स्मरण किया। वह तुरन्त प्रकट हो गया। उसने तब उन दोनों भाइयों से कहा 'तुम्हारी यह बहन शाप भ्रष्टा अप्सरा है। मैंने उसने पत्नी रूप में स्वीकार कर लिया है। तुम दोनों ने भी शाप के कारण पृथ्वी पर जन्म लिया है। श्रुतार्था को पुत्र ही प्राप्त होगा। उसको पुत्र होते ही तुम तीनों शाप मुक्त हो जाओगे।' यह कहकर वह गुप्त हो गया। योग्य समय आने पर श्रुतार्था को पुत्र की प्राप्ति हुई। हे मित्र, मेरा जन्म होते ही आकाशवाणी हुई और कहा गया कि यह गुणादय ब्राह्मण है। मैं वही गुणादय हूँ। बाद में मेरी माता और दोनों मामा तीनों ही शाप मुक्त हो गए। कुछ काल उपरान्त, समय आने पर तीनों ही

दिवंगत हो गए। मैं छोटा ही था। बाद में अपने में आत्मविश्वास अपना कर विद्या प्राप्त हेतु मैं दक्षिणा पथ की ओर चला गया। वहाँ पर मैंने विद्या प्राप्त की। पुनः जन्म भूमि के प्रेम के कारण अपने प्रदेश में लौट आया। मेरे साथ मेरे दोनों शिष्य भी थे। इसके बाद की कथा चूहे के कारण वैभव प्राप्त करने की व्यापारी की है। और भी एक कथा है 'वेश्या और सामवेदी ब्राह्मण' की। ये कथाएँ सुनाने के बाद गुणादय आगे का वृत्त काणभूति से कहने लगा 'नगरों में अपने शिष्यों के साथ मैं प्रतिष्ठान नगर के राजभवन में पहुँचा। मेरे आगमन की सूचना मेरे शिष्यों ने राजा को दी। आज्ञा मिलने पर मैंने दरबार में प्रवेश किया। सातवाहन नरेश को मैंने सिंहासन पर बैठा हुआ देखा। उसके निकट ही शर्ववर्मा और अन्य मन्त्रीगण बैठे हुए थे। शर्ववर्मा ने तब मेरी स्तुति करते हुए राजा को परिचय दिया। प्रसन्न होकर राजा ने मुझे भी मन्त्री बना दिया। मैं अपने शिष्यों के साथ वहीं रहने लगा।'

## 26

उसके बाद उसने देवी की कृपा से निर्मित उपवन की कथा सुनाई। पश्चात् राजा सातवाहन की कथा बतलाई। सातवाहन वंश की उत्पत्ति बतलाई। सातवाहन राजा की जलक्रीड़ा का कथानक भी कहा। रानी के साथ राजा सरोवर में स्नान कर रहे थे। रानी पर राजा जल के तुषारों की बौछार कर रहा था। रानी ने तब संस्कृत में राजा से कहा 'मोदकैः परिताडय माम्' तात्पर्यमहाराज, मुझ पर पानी मत उछालो। राजा को संस्कृत समझ में नहीं आती थी। उसने मोदक (लड्डू) मँगावा लिए। रानी ने कहा 'मुझे मोदक नहीं चाहिए। मेरा तात्पर्य थापानी मत उछालो। आपको मोदक की सन्धि (मा उदकैः) समझ में नहीं आई।' इस पर राजा का अपमान हो गया। वह चिन्तित हो गया। उसकी चिन्ता को शर्ववर्मा ने पहचान लिया। उसने राजा को समझाया और कहा कि जिस व्याकरण को सीखने के लिए बारह वर्ष लगते हैं, वह मैं तुम्हें छः महीने में सिखा दूँगा। उस समय मैंने (गुणादय ने) कहा था कि यदि छः महीने में शर्ववर्मा सिखा दे तो मैं संस्कृत, प्राकृत और देशभाषा को पूरी तरह छोड़ दूँगा। शर्ववर्मा चिन्तित हुआ। वह कार्तिकेय स्वामी की शरण में गया। उसे कार्तिकेय स्वामी का वर मिल गया और उसने अपने कथनानुसार छः महीने में राजा को संस्कृत सिखा दिया। छठा तरंग यहीं समाप्त होता है। शर्ववर्मा अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार जीत गया था इसलिए मैंने तीनों भाषाओं का त्याग किया। उस समय मैं राजा के दरबार में गया। राजा वहाँ बैठा हुआ था। किसी ब्राह्मण ने संस्कृत में स्वरचित श्लोक सुनाया। राजा ने शुद्ध संस्कृत में उसका पठन किया। सभी प्रसन्न हुए। राजा ने शर्ववर्मा से पूछा कि तुम्हें कार्तिकेय स्वामी की कृपा कैसे प्राप्त हुई? उसके बाद शर्ववर्मा ने अपनी कथा सुनाई। सरस्वती ने उसके मुख में प्रवेश किया था। कार्तिकेय स्वामी ने 'सिद्धो वर्ण समान्नाय' का उच्चारण किया। उसे सुनकर शर्ववर्मा ने अपनी



कल्पना से आगे के सूत्रों का भी उच्चारण किया। शान्त स्वभाववाले कार्तिकेय स्वामी ने तब कहा आगे के सूत्रों का उच्चारण न कर चुप रहता तो मैं तुझे पाणिनि से भी श्रेष्ठ जो व्याकरण है, वह तुम्हें सिखाता। अब तो अल्प विस्तार का व्याकरण ही तुम्हें आएगा और इसे 'कातन्त्र' व्याकरण शास्त्र कहना होगा। मेरा वाहन मयूर है उसके पंखों का नाम कलाप है, उस नाम से भी इसे 'कलाप' या 'कापालक' संज्ञा प्राप्त होगी। कथा लम्बी है।... .. उसके बाद गुणाद्वय ने प्रतिष्ठान नगरी छोड़ दी। राजा ने समझाया पर वह रुका नहीं। वह कहता है 'मैं मौन हो गया और विंध्यवासिनी देवी के पास लौट गया। किसी भील के सहयोग से मैं विंध्यारण्य में पहुँच गया। वहाँ पर व्यापारी का सहयोग भी मिला। रास्ते में मैंने बहुत से पिशाच देखे। वे परस्पर बोलते हुए जा रहे थे। उनकी भाषा मैंने सीख ली। उससे मैंने मौन का त्याग किया। बात यह है कि यह पैशाची भाषा, संस्कृत, प्राकृत और लोकभाषा से अलग है और यह चौथी भाषा है। वहाँ लौटने पर मुझे मालूम हुआ कि तुम उज्जयिनी गए हो। तुम पुनः लौट आओगे। इसी आशा से मैं वहाँ पर तुम्हारी (काणभूति की) प्रतीक्षा करता रहा। अब तो यहाँ पर तुम्हारे दर्शन हो ही गए। मैं पैशाची भाषा में तुम्हारा स्वागत करता हूँ। मुझे अपने पूर्वजन्म का भी स्मरण हो गया है।'

27

उसके बाद सातवें तरंग में ही और भी कथाएँ हैं। भूतिवर्मा दिव्य राक्षस की कथा है पुष्पदंत नाम के रहस्य की कथा है। शिबी की कथा है और फिर अन्त में माल्यवान की कथा है। उसने बाद गुणाद्वय ने काणभूति से प्रश्न किया कि श्री शंकर ने जो कथा सुनाई, वह मुझे सुना। तब हम दोनों ही शाप मुक्त हो जाएँगे। सातवाँ तरंग समाप्त होता है।

28

कथापीठ लम्बक के आठवें और अन्तिम तरंग में बृहत्कथासागर की कथा है। गुणाद्वय के कथनानुसार काणभूति ने सात कथाओं वाली वह दिव्य कथा गुणाद्वय को सुनाई। वह कथा उसे पुष्पदंत (वररुचि) ने सुनाई थी। बाद में गुणाद्वय ने वे सात कथाएँ सात लाख श्लोकों में लिख डालीं। उसे लिखने में उसे सात वर्ष लग गए। उस समय अरण्य में स्याही उपलब्ध नहीं थी। और विद्याधरों द्वारा कथाओं के ले जाने का भय भी था। इसलिए गुणाद्वय ने वे सात कथाएँ अपने रक्त से लिखीं। बाद में उसने अरण्य में ही कथा पढ़कर सुनाई। उसे सुनने के लिए विद्याधर, सिद्ध आदि आकाशगामी जनों ने आकाश में भीड़ की। उक्त कथा को सुनकर काणभूति शाप मुक्त हो गया। बाद में वह पुनः समय आने पर अपने स्थान पर चला गया। वहाँ उपस्थित पिशाचों ने भी वह कथा सुनी और सुनकर मुक्त होकर स्वर्ग को चले गए।

29

गुणाद्वय को उःशाप देते समय पार्वती ने कहा था कि उक्त कथा मृत्युलोक में प्रतिष्ठित होनी चाहिए। इस चिन्ता में गुणाद्वय था। उसके दो शिष्य गुणदेव और नन्दिदेव थे। उन्होंने सुझाव दिया कि इसके लिए सातवाहन राजा ही योग्य है। गुणाद्वय तदनुसार अपने दोनों शिष्यों के साथ प्रतिष्ठान नगरी पहुँचा। वहाँ पर वह प्रतिष्ठान नगरी के निकट के वन में ठहर गया। दोनों शिष्य महाकथा की पुस्तक लेकर सातवाहन के दरबार में पहुँचे। उस समय सातवाहन राजा अपनी विद्या से प्रसन्न और उसी में तल्लीन था। उसने पूछा कि किस भाषा में लिखा गया है? शिष्यों ने कहा पैशाची में। फिर क्या? संस्कृत सीख जाने के कारण उसने पैशाची की उपेक्षा की। उसे वे दोनों शिष्य भी पिशाचों की तरह प्रतीत हुए। और फिर ग्रन्थ का लेखन रक्त से हुआ था। इसलिए उसने उपेक्षा की। गुणाद्वय के शिष्य चकित रह गए। उन्होंने सब कुछ अपने गुरु से कह दिया। फिर उसी वन में अग्निकुण्ड बनाकर, वहीं बैठकर वह कथाएँ पढ़ता रहा। पढ़ने के उपरान्त वह उन पृष्ठों को अग्निकुण्ड को समर्पित करने लगा। कथा सुनने के लिए पशु-पक्षी सब वहाँ श्रोता रूप में उपस्थित थे। उसके शिष्य आँसू बहा रहे थे। पशु-पक्षी भी खाना-पीना भूलकर सुन रहे थे। इससे पशु-पक्षी दुर्बल हो गए। राजा तक इसकी सूचना पहुँची। वे स्वयं उसे देखने आए। उस दृश्य को देखकर राजा द्रवित हुआ। उसने गुणाद्वय के चरणों में माथा रखा। और श्री शंकर के मुख से जो कथा सुनी है, वह सुनाने की प्रार्थना की। गुणाद्वय ने अपने निवेदन को दोहराते हुए कहा मैंने तो पूरी सात कथाएँ भेजी थीं किन्तु वे लौट आईं। अब तक मैंने छः कथाएँ तो अग्नि को समर्पित कर दी हैं। अब सात लाख श्लोकों में से छः लाख श्लोक भस्म हो गए। एक लाख श्लोकों वाली एक कथा उदयन और नरवाहनदत्त की शेष है। उसे स्वीकार करो। मेरे शिष्य इनका अर्थ संस्कृत में समझाएँगे। यह कहकर गुणाद्वय ने राजा से बिदाई ली और योग-समाधि ली। मानवी देह त्याग कर, शापमुक्त होकर वह अपने पूर्व पद पर स्वर्गगामी हुआ। आठवें तरंग का समापन होता है।

30

नमूने के रूप में मैंने कथापीठ के आठ तरंगों का संक्षेप ऊपर लिखा है। वस्तुतः पृ. 62 से 141 तक का यह कथापीठ लम्बक है। कथानकों के भीतर अन्य कथाएँ हैं। पूर्वजन्मों के वृत्त हैं। मानव लोक और स्वर्ग लोक के देवता गणों को जोड़कर कथाएँ लिखी गईं। और यह सब कथापीठ लम्बक में ही नहीं, आपितु सभी लम्बकों की स्थिति यही है। लगता है सोमदेव ने इस विस्तार कर दिया है और अपनी योजना के अनुसार सब कुछ लिखा है।

यह तो स्पष्ट है कि पैशाची को प्राकृत भाषा से अलग माना गया है। उसे लोक भाषा से भी अलग माना गया है। दूसरी बात यह है कि पूरे कथानकों में कथाओं के सूत्र स्वर्गीय पात्रों से (मानवेतर देवगणों से) बद्ध हैं। और फिर जो मानव रूप में अवतरित हैं या इस लोक के हैं, वे सब शापों और अभिशापों से बद्ध हैं। आकाशगामी होना और जल की (समुद्र की) यात्रा करना मामूली बात है। एक लोक, दूसरे लोक से जुड़ा हुआ है। सृष्टि के आरम्भ से कथाएँ जुड़ी हुई हैं। दूसरी बात ध्यान योग्य यह है कि जब यह रचना पैशाची में हुई, उसी समय पैशाची को पिशाचों की भाषा कहा गया। बाद में उसे भूत भाषा कहा गया। गुणादय को ब्राह्मण कहा गया। कथापीठ में मानव लोक में ब्राह्मण पात्र अधिक हैं। पूर्व जन्म की कथाएँ लिखकर संस्कृत भाषा को महत्ता प्रदान की गई है। यह सब सोमदेव के समय की है। सोमदेव तथा क्षेमेन्द्र, जिसने बृहत्कथा मंजरी के रूप में बृहत्कथा का रूपान्तर किया है, दोनों ही समकालीन हैं। किसी राजा को क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामंजरी ठीक नहीं लगी, इसलिए सोमदेव ने बृहत्कथासागर पुनः उसी काल में लिखा। वह अधिक पसन्द किया गया। इन दोनों में ही अठारह-अठारह लम्बक हैं। क्रम से पाँच लम्बक तो समान हैं किन्तु बाद के क्रम बदल गए हैं। बाद के तेरह लम्बकों के क्रम एक नहीं हैं। आगे-पीछे हो गए हैं। यह कहना कठिन है कि किसका क्रम कैसे परिवर्तित हुआ? और भीतर की सामग्री में भी क्या अन्तर रहा है? केतकर का कहना है कि बृहत्कथा मंजरी में और भी सामग्री जोड़ी गई है। (निर्णयसागर, मुम्बई की 1931 ई. में प्रकाशित)। उसमें कथामंजरी का एक परिशिष्ट अलग है और वह तंजावर की हस्तलिखित प्रति के आधार पर तैयार किया गया है। उसमें बाणभट्ट की कादम्बरी की सारी कथा भी है। इससे लगता है कि समय-समय पर और भी जो कथाएँ लिखी जाती रही हैं, उनको भी जोड़ने का प्रयत्न होता रहा है। यह तो मानना पड़ेगा कि दोनों में बृहत्कथासागर और बृहत्कथामंजरी में क्रम बदलने पर साम्य अधिक है और दोनों एक ही काल की रचनाएँ हैं। **बृहत्कथा की योग्यताप्रकरण** 19वें में केतकर ने विस्तार से सोदाहरण सब कुछ लिखा है? <sup>12</sup>

केतकर यह भी मानते हैं कि प्रथम लम्बक जिसकी कथा मैंने ऊपर नमूने के रूप में लिखी है, वह बाद में जोड़ी गई है। वह प्राचीन प्रतीत नहीं होती। उसके बाद के लम्बक कथामुख लम्बक निश्चित ही प्राचीन हैं। वास्तव में आरम्भ की प्रस्तावना कथामुख लम्बक में है। वस्तुतः ग्रन्थ का आरम्भ कथामुख से होता है।<sup>13</sup> बाद के लम्बक अपेक्षाकृत प्राचीन हैं। गुणादय का अस्तित्व ई. पू. का होना चाहिए। बाद के लम्बकों में कथापीठ के कथानक से मेल नहीं बैठता। गुणादय शिवजी का गण

थायह बाद में कहीं नहीं है और न ही काणभूति को पिशाच कहा गया है। लगता है वररुचि वैयाकरण ने भाषा परीक्षण के लिए पैशाची साहित्य का संग्रह किया और उसकी तुलना, उसने शौरसेनी से की। गुणादय का ग्रन्थ उस समय पैशाची में सुरक्षित रह गया और बाद में भी उसका पठन प्राकृत की तरह होता रहा। केतकर ने विस्तार से सब लिखा है। उसने बृहत्कथा का विस्तार कैसे कैसे होता गया, इसे भी स्पष्ट करने का प्रयत्न किया। इस विस्तार में प्रक्षिप्त अंशों का त्याग कर मूल की पहचान के आधार पर ग्रन्थ की ऐतिहासिक मीमांसा की है। एक-एक लम्बक पर स्वतन्त्र रूप से (परिवर्तित लम्बकों पर) विचार प्रस्तुत किए हैं।<sup>14</sup>

**दुर्गा भागवत** के अध्ययन का आधार लोक कथाएँ हैं। इसमें समय-समय पर जो कथाएँ जोड़ी गई हैं, उनकी पहचान उन्होंने की है। वे विश्व की अन्य प्रमुख भाषाओं पर इन कथाओं के प्रभाव को पहचानती हैं। इसके जो अनुवाद हुए हैं और कथाओं में जो आदान-प्रदान हुआ है, उन सब की मीमांसा वे अपनी प्रस्तावनाओं में करती हैं। कथासरित्सागर की ख्याति के सम्बन्ध में वे विस्तार से लिखती हैं। तदर्थ उन्होंने तेरहवीं शताब्दी के गोवर्धनाचार्य की गाथा सप्तशती की पंक्तिओं को उद्धृत किया है

श्री रामायण भारत बृहत्कथानां कवीन्मस्कुर्मः।  
त्रिस्त्रोता इव सरसा सरस्वती स्फुरती यै भिन्नाः॥

इन पंक्तियों में वाल्मीकि और व्यास के साथ गुणादय को भी नमस्कार किया गया है। रसमय वाणी इन तीनों से प्रवाहित हुई है। गुणादय को पुनर्जन्मों का द्वार कहा गया है

अतिदीर्घजीवि दोषाद् व्यासेन यशोऽपहारितं हन्त।  
कैर्नोवच्यते गुणादयः स एव जन्मान्तरापन्नः॥

चिरंजीवित्व के दोष से व्यास ने अपना यश खो दिया। अन्यथा स्थिति में गुणादय को पुनर्जन्म का व्यास कोई नहीं कहता।<sup>15</sup>

और सच तो यह है कि बृहत्कथासागर को ही बाद में अधिक प्रसिद्धि मिली। मूल रूप किसी को पढ़ने के लिए उपलब्ध नहीं था। विदेशियों ने भी संस्कृत रूपों का अध्ययन किया। बुधस्वामी के बृहत्कथा-श्लोकसंग्रह का प्रकाशन 1908 ई. में फैलिक्स लाकोत ने पेरिस से सम्पादित और प्रकाशित किया। उसके बाद उसका प्रकाशन नहीं हुआ। उसका फ्रेंच भाषा में अनुवाद उस सम्पादित ग्रन्थ में जोड़ा गया है। इस ग्रन्थ को

लम्बकों में न लिखकर सर्गों में लिखा गया है। दुर्गा भागवत ने 28 सर्गों का कथानक प्रस्तावना में लिखा है। बृहत्कथा-श्लोकसंग्रह के कथानक में जो परिवर्तन हुआ है, उसका तुलनात्मक विवरण दुर्गा भागवत ने दिया है। प्रस्तावना के पृ. 10 से पृ. 59 तक यही विवरण है। लाकोत (Lacote) का कहना है कि यह रूप बारहवीं शताब्दी से दो-तीन शताब्दी पहले का है। लाकोत ने वसुदेव हिण्डी का अवलोकन नहीं किया। उसे यदि वह देख लेता तो उसके निष्कर्ष और भिन्न होते। लाकोत ने बौद्धों के ऋण को स्वीकार किया है। उसका कहना है

‘बृहत्कथा में बौद्ध वाङ्मय की परम्परा मिलती है। वणिक् वर्ग को अधिक प्रधानता दी गई है। रामायण और महाभारत में अर्जुन, राम आदि देवांश वाले पुरुष नायक हैं। इस तुलना में उदयन और नरवाहनदत्त से इन्हें प्रधानता मिली है। उनका व्यवहार मध्यमवर्ग की परम्पराओं से अधिक मेल रखने वाला है। गौतम बुद्ध का ब्राह्मणों के महाकाव्य में कोई स्थान नहीं है।...बौद्ध परम्परा के अनुसार सामान्य और उपेक्षित मनुष्य समाज से अलग नहीं होता, उसमें लोकजीवन है। लोकजीवन को अधिक महत्व दिया गया है।’<sup>16</sup>

दुर्गा भागवत आगे लिखती हैं कि नेपाल में बृहत्कथा को शैव माना गया है। किन्तु स्वयं भूप्रखण्ड में गुणाद्वय का नाम भी नहीं मिलता। बृहत्कथा में तो उपनिषदों का मजाक उड़ाया गया है। कापालिकों और ब्रह्मचारियों के बनावटी रूप मिलते हैं। जैन साधुओं की स्थिति भी कुछ इसी प्रकार की है। बृहत्कथा में स्थानीय विवरण अधिक हैं। उदयन अपने स्थान का वीर पुरुष रहा है। प्रद्योत, विम्बिसार ये भी वैसे ही पात्र हैं।

### 35

वस्तुतः बृहत्कथा में जैन परम्परा, बौद्ध परम्परा, शैव परम्परा के अलग-अलग रूप मिलते हैं। इसके आधार पर इसकी लोकप्रियता को पहचानना ठीक होगा। जैनों की परम्परा को पहचानने का प्रयत्न दुर्गा भागवत ने किया है। दूसरे भाग की प्रस्तावना में ‘**वसुदेव हिण्डी**’ का पूरा कथानक अन्त में (पृ. 20 से 61 तक) दिया है।

### 36

‘**वसुदेव हिण्डी**’ संघदास मणि की रचना है, जो जैन महाराष्ट्री में लिखी गई है। 1977 ई. में डॉ. जगदीशचन्द्र जैन ने इसे अहमदाबाद से प्रकाशित किया। उसी को आधार मानकर दुर्गा भागवत ने अपना अध्ययन प्रस्तुत किया है। डॉ. जैन ने चयन किया हुआ कुछ भाग ही अनूदित किया है। मूल प्राकृत का अनुवाद पूरा नहीं है? डॉ. जैन से पूर्व 1931 ई. में इसका पूरा प्रकाशन प्राकृत में हुआ है। यह सम्पादन मुनि चतुरविजयजी और मुनि पुण्यविजयजी दोनों ने मिलकर किया है। बृहत्कथा-श्लोक

संग्रह का (बुधस्वामी का) प्रकाशन 1908 ई. में पहली बार हुआ। लाकोत को इसीलिए इसकी जानकारी नहीं थी। **वसुदेव हिण्डी** पर पहला शोध लेख 1935 ई. में लुडविग अॅल्सडार्फ ने रोम की अन्तर्राष्ट्रीय प्राच्य परिषद् में पढ़कर सुनाया। इसमें कथासरित्सागर और बृहत्कथामंजरी को कश्मीर की कृति माना गया है। उसका बहुत सा भाग इन दोनों ग्रन्थों में नहीं है। बुधस्वामी के ग्रन्थ को अपेक्षाकृत प्राचीन और मूल के निकट माना गया है। इसमें अॅल्सडार्फ ने यह भी दिखलाया कि इसकी भाषा आर्ष जैन महाराष्ट्री है। वे बृहत्कथा के पर्याय के रूप में इसका सम्पादन करना चाहते थे, जो सफल नहीं हुआ। वसुदेव हिण्डी वस्तुतः वसुदेव चरित है। उसकी प्रस्तावना में संघदास मणि कहता है कि मैं वसुदेव (कृष्ण के पिता) का चरित्र लिख रहा हूँ। सुधम्मा ने अपने शिष्य जम्बु को तीर्थंकर और वसुदेव को चक्रवर्ती कहा है। जैन वाङ्मय में यह लोकप्रिय ग्रन्थ था। इसका बाद में भी उल्लेख मिलता है। मञ्जिमखण्ड के अन्त में वसुदेव की पत्नियों की सूची दी गई है, वे सब वसुदेव हिण्डी में भी हैं। वाडिवेताल शान्तिसूरि (मृत्यु 1040 ई.) ने उत्तराध्ययन सूत्र की टीका में अगडदत्त की कथा लिखी है, वह वसुदेव हिण्डी के कथानक से मेल खाती है। वसुदेव हिण्डी में 6 विभाग हैं। उन्हें अहिभार कहा गया है। कहप्पत्ति (कथोप्पत्ति), पेदिया (पीठिका), मुह (मुख), पडिमुह (प्रति मुख), सरिर (शरीर) और जनसंहार (उपसंहार)। इसके दूसरे भाग में कृष्ण कथा का कुछ भाग है। उसमें प्रद्युम्न-पज्जुण और साम्ब की कथा है। साम्बु सुहिरण्णा (सुहिरण्णा) लावाणवती गणिका-कन्या से प्रेम करता है। यह प्रेमकथा बृहत्कथा-श्लोकसंग्रह की मदनमंजुका की प्रेमकथा की प्रतिकृति प्रतीत होती है। 28 लम्बों में लिखी हुई कथा है। उसमें 26 नायिकाएँ हैं। इन सबका विवाह वसुदेव से हुआ है। इसके उन्नीस-बीस लम्ब लुप्त हैं। 17000 श्लोकों में से 500 श्लोक ही उपलब्ध हैं। किसी-किसी लम्ब की कुछ पंक्तियाँ ही उपलब्ध हुई हैं। वसुदेव हिण्डी की रचना गद्य पद्य दोनों में हुई है। इसमें, विद्याधर हैं, चक्रवर्ती हैं। त्रेसप्त शलाका-पुरुषों के नामों में से कई हैं। भरत चक्रवर्ती है। कथाओं में बृहत्कथा से अधिक मेल रखनेवाली कथाएँ हैं। कथासरित्सागर के दूसरे भाग में मदनमंजुका है और आगे भी जो कथानक है, वह वसुदेव हिण्डी से अधिक मेल खाता है इसीलिए दुर्गा भागवत ने इसे दूसरे भाग की प्रस्तावना में लिखा है।<sup>17</sup>

### 37

विदेशों में इस कथा को विशेष ख्याति मिली है। इसे The Ocean of Story (कथासागर) भी कहा गया है। इसे प्रो. ब्रौकहाउस (Brookhans) ने 1839 ई. में संस्कृत में सम्पादित किया और प्रकाशित किया। बाद में तो और भी विद्वानों ने इस पर काम किया। जर्मनी में इसे छापा गया है। उसके अंग्रेजी अनुवाद भी छपे हैं।

1889 ई. में मुम्बई से दुर्गा प्रसाद ने निर्णय सागर प्रेस से ब्रौकहाउस की प्रति और अन्य दो हस्त लिखित प्रतियों के आधार पर इसे छपा। कलकत्ता विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार चार्ल्स हेनरी टॉनी ने इस प्रकार के अनेक प्राचीन ग्रन्थों का प्रकाशन करवाया है। पेंज़र ने भी अपने अनुवादों में मूल ग्रन्थों को प्रामाणिक रूप में छापने का प्रयत्न किया है। रिचर्ड टेम्पल और ग्रियर्सन ने भी ऐसा काम किया है। रिचर्ड टेम्पल का कहना था कि भारत कथाकथनों का मूल स्थान रहा है। यहीं से कथाएँ अरबस्तान में पहुँची हैं। मध्य भारत से ये कथाएँ कॉन्स्टिटिनोपाल और वेनिस को पहुँची हैं और फिर वहाँ की कथाओं में मिश्रित होती गई हैं। पंचतन्त्र को भी विदेशों में इसी प्रकार ख्याति मिली है। पूर्व की संस्कृति कथाओं के माध्यम से पश्चिम में पहुँची हैं। प्रथम भाग में शिबि राजा और शिकारी की कथा है जिसमें शिबि अपना मांस देता है। वह तराजू पर बैठ जाता है। यह कथा कथासरित्सागर में है, बौद्ध जातकों में है। और इसका प्रभाव शेक्सपियर के शायलॉक की कथा में भी है। पेंज़र ने 1924 ई. में इस कथा के दस भाग प्रकाशित किए हैं।<sup>18</sup>

### 38

कथासरित्सागर की कथाओं में और भी कथाएँ जुड़ती रही हैं। उनमें प्रधान रूप से पंचतन्त्र तथा बैताल पच्चीसी की कथाएँ हैं। तीसरे भाग में पंचतन्त्र की कथाएँ हैं और चौथे भाग में बैताल पच्चीसी की पच्चीस कथाएँ हैं। तीसरे भाग की प्रस्तावना में पंचतन्त्र के सम्बन्ध में लिखा गया है और चौथे भाग की प्रस्तावना में बैताल पच्चीसी के सम्बन्ध में लिखा गया है। ये रचनाएँ अलग प्रतीत होती हैं। ये कथाएँ लोकप्रिय रही हैं और इनका उपयोग विश्व की अन्य भाषाओं में भी हुआ है। प्रश्नों का उत्तर देने में, शंकाओं का समाधान प्रस्तुत करने के लिए और नीति कथन में इन कथाओं का उपयोग होता रहा है।

### 39

कथासरित्सागर के दसवें लम्बक 'शक्तिवश लम्बक' में पंचतन्त्र की कहानियाँ हैं। कथासरित्सागर के तीसरे भाग में यही लम्बक बड़ा है। पृ. 147 से पृ. 328 तक यही लम्बक है। नौवें लम्बक के अन्त में नल-दमयंती की कथा है। ये सब कथाएँ नरवाहनदत्त को सुनाई जाती हैं। उसका मनोरंजन करने के लिए और शंकाओं का निवारण कर बोध-कथन हेतु कथाओं का विस्तार हो गया है। प्रायः कथाएँ रात्रि में सुनाई गई हैं। इससे नरवाहनदत्त को बाद में सुख से नींद आती है। दिन में नरवाहनदत्त अपने मन्त्रियों के साथ उद्यानों में विचरण करता है। जो कुछ देखता है, उससे उसके मन में तरह-तरह के प्रश्न उपस्थित होते हैं। तर्क करना और उनका समाधान चाहना, उसका स्वभाव सा हो गया था। ये मन्त्री, रात्रि में फिर कथाएँ सुनाते

थे। उद्यान में वह शक्तियशा विद्याधरी को देखता है। उसके साथ संवाद होता है। वह अपना परिचय देती है। वह उसी को देखने के लिए आई थी। अपनी कथा कहकर वह अपने माता-पिता के पास लौट जाती है। नरवाहनदत्त बेचैन हो जाता है। वह उत्कटित होता है और मन्त्री से प्रश्न पूछते रहता है। स्वयं शक्तियशा तो अपना परिचय देती है किन्तु बाद में उसके चले जाने पर मन्त्री भी उसे कथाएँ सुनाते हैं। अवधि का कालकथाओं के कहने से पूरा होता है। इसी हेतु पंचतन्त्र की कथाएँ सुनाई गई हैं। पक्षियों की, पशुओं की कथाएँ इसी हेतु कही गई हैं। प्रधान रूप से ये कथाएँ पंचतन्त्र की हैं तोते की आत्मकथा, संजीवक और पिंगलक, सिंह और दमनक, संजीवक और सिंह, सिंह और खरगोश, सिंह और ऊँट, कछुआ और सिंह...आदि आदि। इन कथाओं में पशु-पक्षी, स्त्री-पुरुष सभी हैं। मानवी व्यवहारों का भण्डार है। मन्त्रियों में गोमुख मन्त्री ने अधिक कथाएँ सुनाई हैं। बुद्धिमानों की कथाएँ हैं और मूर्खों की कथाएँ हैं। इन कथाओं को सुनते समय समय कैसे बीतता, इसका उसे ध्यान नहीं रहता। अद्भुत, विचित्र और मनोरंजक कथाएँ हैं। घटना-बाहुल्य है और सुनते-सुनते जिज्ञासा बढ़ती जाती है। नींद आने लगती है और कहा जाता है कि फिर क्या हुआ? आगे की कथा सुनने की और जानने की इच्छा होती है। शक्तियशा विद्याधरी के साथ में नरवाहनदत्त का विवाह होता है और इस दसवें लम्बक का अन्त होता है।

### 40

दुर्गा भागवत ने अपनी प्रस्तावना में पंचतन्त्र का विस्तार से परिचय दिया है। पंचतन्त्र के उपलब्ध रूपों का, उनके प्रकाशनों का, विविध भाषाओं में इन कथाओं के अनुवादों का, तथा विविध भाषाओं के साहित्य पर पंचतन्त्र के प्रभाव का ब्यौरा एवं विवरण उन्होंने दिया है। सोमदेव के कथासरित्सागर में सब से अधिक कथाएँ हैं। सोमदेव ने अपनी शैली में इन कथाओं को मोड़ दे दिया है। बहुत-सी कथाओं का संक्षेप है। नित्य उपदेश से बचकर सूत्र पद्धति में कथाएँ नहीं लिखी गई हैं। पंचतन्त्र के पाँचों तन्त्र की कथाओं में जिन कथाओं का उपयोग हुआ है, उनकी तालिका उन्होंने दी है। जिन कथाओं का उपयोग नहीं हुआ, उनकी तालिका भी दी है।

### 41

बैताल पच्चीसी की पच्चीस कथाएँ भी कथासरित्सागर में हैं। चौथे भाग में एक ही लम्बक है और वह है शशांकवती लम्बक। उसी के अन्तर्गत बैताल पच्चीसी पृ. 155 से 333 (तरंग 8 से तरंग 33 तक) तक है। चौथे भाग के परिशिष्ट में दुर्गा भागवत ने बैताल पच्चीसी की विवेचना की है। परिचय दिया है और सन्दर्भ भी बतलाया है।

इस कथा की दो शाखाएँ बतलाई गई हैं एक शिवदास की शाखा है और दूसरी जम्मलदत्त की बतलाई गई है। शिवदास की शाखा हेनरिच उल्ह (Heinrich Uhle) ने 1884 में प्रकाशित की और दूसरी का प्रकाशन पण्डित जीवनानन्द विद्यासागर ने कलकत्ता से 1878 ई. में प्रकाशित किया। शिवदास की शाखा गद्य-पद्यात्मक है, जब कि जम्मलदत्त की शाखा मात्र गद्य में है। इनके काल निर्णय के सम्बन्ध में अधिक जानकारी नहीं है। भारत की प्रायः सभी प्रमुख आधुनिक भाषाओं में इसके अनुवाद समय-समय पर हुए हैं। ब्रजभाषा में प्रथम अनुवाद 1743 ई. में सवाई जयसिंह के समय में हुआ। बाद में ब्रजभाषा में ही इसका अनुवाद लल्लूजीलाल ने 1805 ई. में प्रस्तुत किया। इसके बाद में तो शम्भुनाथ, भोलानाथ ने भी ये अनुवाद प्रस्तुत किए। प्रमुख भाषाओं में कन्नड़, बँगला, तेलुगु, गुजराती, तमिल और मराठी में भी इसके अनुवाद मिलते हैं। भारतीय भाषाओं के साथ-साथ विदेशी भाषाओं में भी इसके अनुवाद हुए हैं। इन सबको देख जाँचें तो इसकी ख्याति का अनुमान किया जा सकता है। मूल कथाएँ संस्कृत में लिखी गई हैं। पंचतन्त्र की कथाएँ भी संस्कृत में मिलती हैं। इससे लगता है कि ये गुणाढ्य की बृहत्कथा में सम्भवतः न हों। कथासरित्सागर, बृहत्कथामंजरी में (दोनों संस्कृत में हैं) ये कथाएँ मिलती हैं। काल प्रवाह में कथाओं का स्वरूप बदलता गया है। इन कथाओं पर बौद्धों का प्रभाव है। प्राचीन हिन्दू कथाएँ इनमें हैं और जैनों का भी प्रभाव है। कुछ शैव हैं। कुछ वैदिक प्रभाव से युक्त हैं, कुछ जैन कथाएँ भी हैं। विक्रम की कथाएँ होने के कारण जैनों का प्रभाव अधिक है।

## 42

बैताल पच्चीसी का नायक कौन है, उसके सम्बन्ध में आज भी कोई निर्णय नहीं है। कश्मीरी पर्याय में सोमदेव का नायक है और वह है त्रिविक्रमसेन। वह विक्रमसेन का पुत्र है किन्तु जैन परम्परा में नायक विक्रम है। उसे विक्रमादित्य भी कहा गया है। अन्य कथाओं में भी नायक विक्रम ही है। विक्रम चरित्र या सिंहासन बत्तीसी का नायक भी विक्रमादित्य है। विक्रम संवत् का नायक विक्रमादित्य है और इसे जैन परम्परा का माना गया है। इस सम्बन्ध में विवाद बना हुआ है। कथासरित्सागर में बतलाया गया है कि प्रतिष्ठान नगरी के राजा विक्रमसेन थे। उसका पुत्र त्रिविक्रमसेन था। उसे भिक्षु प्रतिदिन फल देता था। फलों को राजा अपने कोषाध्यक्ष को देता था। मालूम हुआ कि उन फलों में रत्न हैं। राजा ने भिक्षु से पूछा कि तुम मेरी सेवा क्यों करते हो? भिक्षु ने कहा 'मेरे साथ आओ।' ऐसा कहकर वह उसे निर्जन स्थान पर ले गया और बोला 'हे वीर मुझे मंत्र की साधना करनी है, उसके लिए मुझे पराक्रमी पुरुष की आवश्यकता है। क्या तुम मेरी सहायता करोगे?' राजा ने स्वीकृति दी। तब भिक्षु पुनः बोला 'आनेवाले कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की रात्रि में यहाँ के श्मशान में चले

आना। वटवृक्ष के पास आना। वहाँ पर मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा।' इस पर शान्तिशील भिक्षु सन्तुष्ट होकर चला गया। बाद में वह ठीक समय पर वह श्मशान में पहुँच गया। कथनानुसार नीले वस्त्र पहन लिए, चन्दन का लेप किया और हाथ में खड्ग लेकर श्मशान में भिक्षु को खोजता रहा। भयानक दृश्य उसने देखा भिक्षु वहाँ पर उसकी प्रतीक्षा में बैठा हुआ है। पूछा मुझे क्या करना है? प्रसन्न होकर भिक्षु ने कहा दक्षिण की ओर सीधे ही सीधे दूर चले जाओ? धुएँ से काला हो गया एक वृक्ष मिलेगा। उस पर शव लटक रहा है। उसको लेकर चले आना। वह पहुँचा। उसने शव देखा। पेड़ पर चढ़कर शव को नीचे गिरा दिया। इतने में बैताल ने उस शव में प्रवेश किया और हँसने लगा। कहने लगा 'चल मैं साथ आता हूँ।' इतना कहकर वह, पुनः पेड़ पर लटकने लगा। राजा ने हार नहीं मानी। शव को पुनः जमीन पर फेंक दिया। नीचे उतरा और तब शव को कन्धे पर डालकर भिक्षु की ओर प्रस्थान किया। उस शव में विराजमान बैताल उसे रास्ते में मनोरंजन हेतु कथा सुनाने लगा। प्रथम कथा 'वज्रमुकुट और पद्मावती' की है। कथा के अन्त में सवाल पूछे गए। सन्तुष्ट होने पर बैताल कन्धे से उतर जाता है और वह शव अपने पूर्व स्थान पर पहुँचकर लटकने लगता है। त्रिविक्रमसेन पुनः जाता है और वही प्रक्रिया दोहराई जाती है। दूसरी बार बैताल दूसरी कथा कहता है और अन्त में पुनः कही हुई कथा पर प्रश्न पूछता है। इस तरह चौबीस कथाओं के उत्तर राजा ने बैताल को दिए। राजा के उत्तर से असन्तुष्ट न होने पर बैताल उसे शाप नहीं दे सका। ये सब कथाएँ और प्रश्न तथा उनके उत्तर मैं नहीं लिख रहा हूँ कि ये प्रश्न और उत्तर यक्ष-प्रश्नों (महाभारत के वन पर्व के) से कम नहीं हैं। बैताल के प्रश्न, यक्ष-प्रश्न ही थे और उनके राजा द्वारा दिए गए उत्तर युधिष्ठिर के उत्तर सदृश थे। राजा ने चतुराई से अन्त में पच्चीसवीं कथा में उस भिक्षु का वध कर दिया। वध कैसे करना, यह राजा को चौबीसवीं कथा के अन्त में बतलाया था। चौबीसवीं कथा के अन्त में बैताल ने कथा पर प्रश्न पूछा। राजा, चुप हो गया, उत्तर नहीं दे सका। इस पर भी बैताल उसके व्यवहार से प्रसन्न था। उसने भिक्षु शान्तिशील से राजा को सजग कर दिया था और कहा था कि वह मुझे प्रसन्न करने के लिए तुम्हारा वध करेगा। तुम्हारी बलि देगा। उसे सिद्धि प्राप्त करना है किन्तु, तुम उसके चक्कर में न आना। पूजा की विधि समाप्त होने पर वह तुम्हें नमस्कार करने को कहेगा और तब तुम उसे नमस्कार कैसे करना? पूछो और जब वह नमस्कार करने सिर झुकाकर लेट जाएगा। तो उसका वध कर देना और तब उक्त सिद्धि उसे प्राप्त न होकर तुम्हें प्राप्त होगी। उसने यथा-समय वैसा ही किया और भिक्षु शान्तिशील की सिद्धि राजा को प्राप्त हो गई। बैताल प्रकट हुआ और वर माँगने को कहा तब राजा ने इन कथाओं की फलश्रुति सुननी चाही। वह बैताल ने सुना दी। तब श्री शंकर उपस्थित हुए। आशीर्वाद दिए। फिर तो त्रिविक्रमसेन सबेरे अपने राज्य में लौट आया। उसे यथासमय विद्याधरों का

प्रमुख पद मिला। बाद में **विक्रम केसरी मन्त्री** ने उस कथा को जैसे सुना, उसे वैसे ही **मृगांकदत्त मन्त्री** को सुनाई और फलश्रुति के रूप में शव-साधना कर बैताल को प्रसन्न किया। बैताल उपस्थित हुआ। पूछाक्या चाहते हो? कहामुझे बिलुड़े हुए साथियों से मिलाओ। तब बैताल उसे अपने कन्धे पर लेकर उड़ा और विक्रमकेसरी से उसे मिला दिया। दोनों मिलकर प्रसन्न हुए। बाद में और साथी भी मिले।

### 43

बैताल पच्चीसी का सार-संक्षेप ऊपर दिया है। इन सब कथाओं की घटनाओं और चरित्र चित्रण में जो विविध रूप मिलते हैं, उनकी मीमांसा करते हुए उन कथाओं की तुलना अन्यत्र उपलब्ध कथाओं से दुर्गा भागवत ने की है (देखिए, पृ. 413 से 428 परिशिष्टभाग 4 के अन्त में) विस्तार भय से यह सब नहीं लिख रहा हूँ।

### 44

**उपसंहार :** मूल बृहत्कथा, गुणादय की लिखी हुई है और वह पैशाची में है। उसका विस्तार और अभिवृद्धि ग्यारहवीं शताब्दी तक होता रहा है। संस्कृत वाङ्मय का ही नहीं, अपितु बौद्ध तथा जैन वाङ्मय का प्रभाव भी उन कथाओं पर है। ये कथाएँ विश्व-साहित्य की प्राचीन कथाएँ हैं। देश-विदेश में इनका प्रचार है और वह कम होनेवाला नहीं है। भारत की आधुनिक भाषाओं में इनके विविध रूप मिलते हैं। इनको प्रायः लोकवाङ्मय के रूप में अधिक स्वीकृति मिली है। पैशाची भाषा में ये कथाएँ क्या सोमदेव के समय तक थीं? और वह भी क्या पैशाची की रचना, उस समय तक थीं? ऐसा नहीं लगता। संस्कृत में उसके रूपान्तर (या अनुवाद) समय-समय पर होते रहे और रूपान्तर करनेवालों ने इन कथाओं को लोकवाङ्मय के रूप में अधिक स्वीकार किया। विदेशों में इन कथाओं को लोकवाङ्मय के रूप में स्वीकार किया है। इतिहास, इसे माना ही नहीं। इस पर भी ये कथाएँ गुणादय के नाम पर प्रचलित हैं। गुणादय के मूल स्वरूप की खोज श्रीधर व्यंकटेश केतकर ने की है। उन्होंने उसी के आधार पर इतिहास की पहचान की है। उस पहचान में पैशाची भाषा की पहचान भी है और उदयन तथा नरवाहनदत्त के समय का इतिहास भी है। पूरे कथासरित्सागर में न तो भगवान महावीर हैं और न गौतम बुद्ध हैं। इसीलिए केतकर ने सारे रूपान्तरों के बावजूद गुणादय की रचना को इतिहास के रूप में प्रस्तुत किया है। केतकर की ऐतिहासिक खोज की अब तक मीमांसा नहीं हुई है। मराठी में उन्हें कोशकार तथा समाजशास्त्री के रूप में अधिक पहचाना गया है। उनकी ऐतिहासिक खोज को परखा नहीं गया। शातवाहन राजाओं पर उनका काम अभूतपूर्व और आज भी बेजोड़ है।

उनका भाषिक पर्यालोचन, परख और पहचान भाषाविद् के समान है। इस रूप में भी उन पर स्वतन्त्र रूप से विचार होना चाहिए।

दुर्गा भागवत का लोककथाओं कालोकवाङ्मय का अध्ययन विपुल है और इस रूप में उन्होंने सामाजिक और सांस्कृतिक विवेचन अधिक किया है। कथाओं के आदान-प्रदान को वे खूब पहचानती हैं। आधुनिक काल में लोकवाङ्मय का महत्त्व बढ़ गया है और बढ़ता रहेगा। वे ऐतिहासिक रूप में चिन्तन नहीं करतीं। गुणादय के सम्बन्ध में ही नहीं अपितु सोमदत्त तक पहुँची हुई परम्परा को तो वे बतलाती हैं किन्तु उनकी पहचान लोकवाङ्मय पर केन्द्रित है। बदलाव को बतलाकर वे ऐसा क्यों हुआ? प्रयोजन क्या रहा होगा? इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहतीं। विश्व में जिन कारणों से ये कथाएँ प्रसिद्ध हुई हैं, उनकी मीमांसा वे तथ्यों के आधार पर करती हैं और यही उनकी उपलब्धि है। और यह उपलब्धि भी अपने आप में कम नहीं है।

### सन्दर्भ

1. **भारतीय संस्कृति और हिन्दी-प्रदेश, भाग-1**, डॉ. रामविलास शर्मा, किताब घर प्रकाशन, 24 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण, 1999, पृ. 270।
2. तथा 3. वही, पृ. 200 और 201।
4. **प्राचीन महाराष्ट्र** (आदि पर्व और शातवाहन पर्व) डॉ. श्रीधर व्यंकटेश केतकर, ह. अ. भावे, वरदा बुक्स, वरदा 397-1 सेनापति बापट मार्ग, पुणे-411016; प्रथम संस्करण 1935 ई., द्वितीय संस्करण 1989 ई., विभाग, पृ. 22-(मराठी ग्रन्थ)।
5. वही, पृ. 25।
6. वही, पृ. 127 से 131 (प्रकरण 20वाँ)।
7. वही, उदयन काल और गौतम बुद्ध काल (प्रकरण 22), पृ. 140 से 148 तक।
8. वही, पृ. 178 से 188।
9. वही, पृ. 190-191 (प्रकरण 27वाँ)।
10. वही, प्रकरण 27वें के आधार पर।
11. वही, प्रकरण 20वें के आधार पर।
12. वही, पृ. 118 और 119।
13. वही, पृ. 120।
14. वही, पृ. 122-123 तथा 124।
15. **कथासरित्सागर भाग-1**, अनुवादक ह. अ. भावे, वरदा, पुणे, पुनर्युद्ध 1995, प्रस्तावना, पृ. 5।

16. वही, पृ. 58।
17. कथासरित्सागर, दूसरा भाग, दुर्गा भागवत की प्रस्तावना से।
18. कथासरित्सागर, पहला भाग, दुर्गा भागवत की प्रस्तावना से, पृ. 7 से 10।

## रामायण और महाभारत में पर्यावरण : अवधारणा और स्थिति

**डॉ. मदनमोहन तरुण\***

### पर्यावरण और पर्यावरणजीवी

वाल्मीकीय रामायणगत पर्यावरण की अवधारणा को ठीक आज की भाषा में समझना सरल नहीं है। वहाँ पर्यावरण की अवधारणा प्राणी और उसके परिवेश की भिन्नता में परिकल्पित नहीं है। वहाँ प्रकृति एक ही चेतना का विराट विस्तार है। मनुष्य, पशु, पक्षी, नदी, सागर, वृक्ष, पर्वतादि की कुल-परम्परा का स्रोत एक ही है तथा वे हिन्दू जीवन-दर्शन की पुनर्जन्म की अवधारणा के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न योनियों में जन्म लेते हुए अनेक रूपान्तरों से गुजरते रहते हैं।

जब राम वनवास के क्रम में पंचवटी पहुँचते हैं तब उनकी मुलाकात गृद्धराज जटायु से होती है। विशाल पंखोंवाले उस महापराक्रमी गीध को देखकर लक्ष्मण उसे कोई विकट दानव समझ लेते हैं। परन्तु, जटायु राम को अपना परिचय देते हुए उन्हें 'वत्स' के रूप में सम्बोधित करते हुए स्वयं को उनके पिता दशरथ का मित्र घोषित करते हैं। राम के द्वारा उनके कुल का परिचय पूछे जाने पर वे समस्त प्राणियों के उत्पत्तिक्रम पर प्रकाश डालते हुए उन्हें सत्रह आदि प्रजापतियों की संतति-परम्परा का विकास बतलाते हैं। प्रजापति दक्ष की साठ पुत्रियाँ हुईं, जिनमें आठ का विवाह प्रजापति कश्यप से हुआ। इन आठों में मात्र चार ही मातृत्व का सुख प्राप्त कर सकीं। अदिति से तैत्ति स देवता, बारह आदित्य, आठ वसु, ग्यारह रुद्र तथा दो अश्विनी कुमार उत्पन्न हुए। दिति से दैत्य उत्पन्न हुए, जिनसे दानव वंश का विकास हुआ। कालका से नरक एवं कालक उत्पन्न हुए। ताम्रा से पक्षियों की संतानें चलीं, क्रोधवशा ने मृगी, शार्दूली, सुरसा, कद्रु आदि को उत्पन्न किया। कश्यप की पत्नी मनु के गर्भ से मनुष्य उत्पन्न हुए। क्रोधवशा की पुत्रियों में इरावती से ऐरावत गजराज, हरी से सिंह, वानर,

\* पूर्व, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, भारतीय भाषा संकाय, एल.बी.एस. नेशनल एकेडमी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, मसूरी; पूर्व, वरिष्ठ अकादमिक अधिकारी, नेशनल डिफेन्स अकादमी, खडकवासला, पुणे।  
'तारुण्यम', मुकाई नगर, 7-8 लक्ष्मण अपार्टमेंट, सिंहगढ़ रोड, खडकवासला, पुणे-411024

लंगूर, उलूक आदि उत्पन्न हुए। कश्यप पत्नी अनला ने वृक्ष वर्ग को उत्पन्न किया। उसी वंश-परम्परा में कद्रू ने नागों को तथा विनता ने गरुड़ और अरुण को उत्पन्न किया। उन्हीं विनतानन्दन अरुण से जटायु और उनके बड़े भाई सम्पाति का जन्म हुआ।  
(अरण्यकाण्ड : सर्ग 14)

यह पूरा वृत्तान्त हिन्दू जीवन-दृष्टि की उस अवधारणा की व्याख्या है जिसके अन्तर्गत मनुष्य, किसी भी प्राणधारी, यहाँ तक कि जड़ माने जानेवाले पदार्थों की सत्ता भी, एक-दूसरे से अन्यतर नहीं है। स्वयं सीता किसी मानवी माता के गर्भ से उत्पन्न नहीं हैं। वे पृथ्वी की कुक्षि से उत्पन्न हैं। विश्वामित्र को उनके जन्म की स्थितियों से परिचित कराते हुए जनक कहते हैं

अथ मे कृषतः क्षेत्रं लाङ्गुला दुत्थितम ततः॥13॥

क्षेत्रं शोधमता लब्ध नाम्ना सीतेति विश्रुता।

भूतलादुत्थिता सातु व्यवर्धत ममात्मजा॥14॥

(बालकाण्ड : सर्ग 66)

“एक दिन जब मैं यज्ञ के निमित्त भूमिशोधन करता हुआ हल चला रहा था, तब हल के अग्र भाग (सीता) से जोती गई भूमि से एक कन्या उत्पन्न हुई। सीता से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम सीता रखा गया। वही पृथ्वी से उत्पन्न सीता मेरी पुत्री के रूप में बड़ी हुई।”

जन्म के साथ-साथ सीता का सशरीर अवसान भी पृथ्वी के भीतर ही हुआ। सीता ही क्यों, रामायण के अन्त में स्वयं राम अपने अनेक बन्धु-बांधवों, कुछ अयोध्यावासियों, वानरों, लंगूरों, पशु-पक्षियों के साथ सशरीर सरयू में प्रविष्ट होकर चलते हुए अपने लोक में पहुँच गए।  
(उत्तरकाण्ड : सर्ग 110)

रामायण के साथ ही महाभारत में जीवन की यह अवधारणा अक्षत है। वहाँ निसर्गतः एक योनि से दूसरी योनि में आने-जाने की प्रक्रिया बहुत ही स्वाभाविकता से गृहीत है। मनुष्य योनि के शान्तनु नदी गंगा के पति थे, जिनसे भीष्म का जन्म हुआ था। अन्त में गंगा भी अपना कार्य सम्पन्न कर अन्तर्धान हो गई।

(महाभारत : आदिपर्व / सम्भवपर्व : श्लोक 37-40)

पाण्डु की सारी संतानें सृष्टि के विधायक तत्त्वों में सूर्य (कर्ण), धर्म (युधिष्ठिर), वायु (भीम), इन्द्र (अर्जुन) तथा माद्रीपुत्र नकुल और सहदेव, अश्विनी कुमारों से उत्पन्न संतानें थीं। (महाभारत : आदिपर्व / पौलोमपर्व : अध्याय 122-123) द्रौपदी यज्ञ की वेदी से उत्पन्न हुई थी।  
(आदिपर्व / चैत्ररथपर्व : अध्याय 166)

रामायण और महाभारत के पात्रों का सृष्टि के विधायक तत्त्वों से जन्म, जीवन-विन्यास की वह विराट परिकल्पना है, जिसमें पर्यावरण एवं पर्यावरणजीवी का

द्वित्व ही समाप्त हो गया है। यहाँ एक का विनाश दूसरे का विनाश है और एक का संरक्षण दूसरे का संरक्षण और समृद्धि है। यहाँ मनुष्य ही नहीं, जड़ धातु सोना, चाँदी, लोहा, ताँबा आदि भी भगवान शंकर के पृथ्वी पर स्खलित वीर्य से उत्पन्न हैं अर्थात् उनकी संतानें हैं तथा उसी वीर्य के अग्नि से सम्पर्क होने पर स्कन्द उत्पन्न हो गए।

## प्राकृतिक ऐश्वर्य

रामायण और महाभारत का संसार चतुर्दिक व्याप्त हरीतिमा के विपुल वैभव से सम्पन्न है। आकाश निर्मल है, ऋतुओं की यात्रा अविच्छिन्न और अबाधित है, नदियाँ जल से परिपूर्ण हैं, वृक्ष छतनार और हरीतिमा से पूर्ण हैं, वायु शुद्ध एवं जीवनदायी है, जीवनप्रवाह सर्वत्र स्वास्थ्यपूर्ण है। ऐसे राजा की निन्दा होती है जिसके राज्य में अकाल-मृत्यु होती है। जलाशयों के निर्माण होते रहते हैं वन के साथमानव निर्मित उपवन भी विशाल संख्या में सर्वत्र उपलब्ध हैं। नगर के चारों ओर मार्गों पर वृक्ष लगाए जाते हैं, यहाँ तक कि कृत्रिम झरने भी निर्मित किए जाते हैं। प्रकृति के प्रति लोगों में स्वाभाविक प्रेम है। पर्वो-त्योहारों को भी प्रकृति से जोड़ दिया गया है। कई नदियों, वृक्षों एवं पशु-पक्षियों की पूजा की जाती है। ऋषि भरद्वाज की सलाह पर राम अपनी पत्नी एवं भाई के साथ चित्रकूट के लिए चल पड़े। यमुना पार करने पर उन्होंने प्रकृति के विशाल साम्राज्य में प्रवेश किया। वहाँ विशाल संख्या में लाल-लाल फूलों से लदे पलाश के वृक्ष खड़े थे। लगता था जैसे फूलों की वर्षा हो रही हो। भिलावा और बेल आदि के वृक्ष फलों से लदे थे और उनके भार से झुक गए थे। एक वृक्ष में मधुमक्खियों ने छत्ते लगा रखे थे जो मधु से परिपूर्ण थे। पपीहे ‘पी कहीं’ ‘पी कहीं’ की रट लगा रहे थे और कोयलों की आवाज से ऐसा लगता था मानो वृक्ष उस पुकार का उत्तर दे रहे हों। वह पर्वत अनेकों प्रकार के पक्षियों का आश्रय था और उनके कल-कूजन से सारा वन-प्रदेश परिव्याप्त था।  
(वा.रा. : अयोध्याकाण्ड, सर्ग 56)

इसी प्रकार वाल्मीकि ने अनेकानेक नदियों का जीवंत चित्रण किया है। चट्टानों के बीच से बहती हुई गंगा यहाँ एक चपल नागर युवती के रूप में चित्रित की गई है जो आधुनिक युवतियों के हावभाव से भी मेल खाती है

जलाघाताट्टहासोग्रां फेननिर्मल हासिनीम्।

क्वचिद् वेणीकृत जलां क्वचिदावर्त शोभिताम्॥6॥

(वा.रा. अयोध्याकाण्ड : सर्ग 50)

“प्रवहमान गंगा के प्रस्तर खण्डों से टकराने से उठता हुआ स्वर ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह अट्टहास कर रही हो, उस संघर्षणा से उत्पन्न फेन मानो उसकी



मुस्कान है। जल में उठती तरंगें उसकी वेणी-सी प्रतीत होती हैं। कहीं उसमें भंवरे उठ रही हैं। (मानो वह उसकी नाभि है।)” कहीं उसका जल गहरा है, कहीं अतिशय वेगवान। कहीं उसके जल से मृदंग की ध्वनि निकलती है, तो कहीं लगता है वज्रपात हो रहा हो। यहाँ हंसों का कलरव निरन्तर परिव्याप्त रहता है। उसके जल में कहीं-कहीं उत्पल और कमलवन है। उसके तटों पर खड़ी सघन वृक्षों की मालाकार पंक्तियाँ उसकी शोभा बढ़ाती हैं। उसका स्वच्छ जल मणि-सा निर्मल है। फलों, फूलों, गुल्मों तथा पक्षियों के कलरव (मानो चलने से झंकार उत्पन्न करते उसके आभूषण हैं) से आभूषित युवती सी शोभायमान है। यह कोई साधारण नदी नहीं है। यह विष्णु के चरणों से उद्भूत, शिव के मस्तक से होती हुई पृथ्वी पर उतरी है। यह एक साथ तीनों लोकों में प्रवाहित हो रही है। (वा.रा. अयोध्याकाण्ड : सर्ग 50)

आज जिस मार्ग से गंगा प्रवाहित होती है कभी उस क्षेत्र में कोई छोटा मोटा जलाशय तक नहीं था। महर्षि कपिल के अभिशाप से जब सगर के साठ हजार पुत्र जल कर भस्म हो गए तो उन्हें जलांजलि तक देने के लिए आसपास में पानी नहीं था

स तेषां राजपुत्राणां वर्तुकाले जलक्रियाम ।

स जलावी महातेजा न च पश्यजलाशयम॥15॥

(वा.रा. बालकाण्ड : सर्ग 14)

महाभारत के इसी प्रसंग में जलविहीन एवं भीतिवर्द्धक महासागर की चर्चा की गई है

समुद्रं स समासाद्य निस्तोयं भीमदर्शनम् ॥12॥

(महाभारत : वनपर्व / तीर्थयात्रापर्व)

यही अभाव गंगा को पृथ्वी पर उतार लाने के संकल्प का कारण बन गया, परन्तु इसे साकार करने में कई पीढ़ियाँ लग गईं। गंगा ने नीचे उतर कर न उस विशाल जलहीन सागर को भर दिया, बल्कि सगर के मृत पुत्रों में भी संजीवनी फूँक दी।

गंगा के साथ ही वाल्मीकि ने तमसा, शोणभद्र, सरयू, इक्षुमती, सरस्वती, यमुना, शरदण्ड, मालिनी, विपाशा, सरस्वती, शतद्रु, शिलावहा, मुलिंगा, कपीवती, गोमती, स्थाणुमती आदि अनेक छोटी-बड़ी नदियों का वर्णन किया है जो अपने तटों के निवासियों के जीवन में सुख-स्वास्थ्य और समृद्धि की अभिवृद्धि करती हुई निरन्तर प्रवाहित रहती हैं।

इसी प्रकार वृक्ष, पर्वत, पशु, पक्षियों की भी हमारे स्वस्थ-सकुशल जीवन-प्रवाह में महत्वपूर्ण भूमिका है। रामायण-महाभारत कालीन हमारे पूर्वज उनके निकट सम्पर्क में थे और ऋतुओं के परिवर्तन और पर्यावरण के बदलते मिजाज को गहराई से समझते

थे। वे झूमते वृक्षों और नाचते-गाते कल्लोल करते पक्षियों की मानो भाषा समझते थे। खिलते फूलों में वे अपने जीवन के उत्स का अनुभव करते थे। प्रकृति और मनुष्य की समरसता की इस अनुभूति ने ही उसे सदियों, सहस्राब्दियों तक अक्षुण्ण रखा है। वनवास का समय पूरा करते हुए पाण्डव जब गंधमादन पर्वत पर पहुँचे तब उन्होंने अनेकों प्रकार के लता-पादप और पशु-पक्षी देखे

द्रौपदी सहिता वीरास्तैश्च विप्रैर्महात्मभिः ।

शृण्वन्ताः प्रीतिजननान् वल्लून् मदकलाञ्छुभान्॥42॥

श्रोत्ररम्यान सुमधुराञ्छब्दान् खगमुखेरितान् ।

सर्वतुर्फलभाराद्भयान् सर्वतुकुसुमोज्ज्वलान्॥43॥

पश्यन्तः पादपाश्चापि फलभारावनामितान् ।

आग्रनाम्रातकान् भव्यान् नारिकेलान् सन्तिन्दुकान्॥44॥

मुञ्जातकांस्तथाञ्जीरान् दाडिमान् बीजपूरकान् ।

पनसॉल्लुकुवान् मोचन् खर्जूरानम्लवेतसान्॥45॥

परावतांस्तथा क्षौद्रान नीपांश्चापि मनोरमान् ।

विल्वान् कपित्थाञ्जम्बूश्च काश्मरीर्बदरीस्तथा॥46॥

प्लक्षानुदुम्बरबटानश्वत्थान् क्षीरिकांस्तथा ।

भल्लातकानामलकीर्हीरीतकविभीतकान्॥47॥

इङ्गुदान् करमर्दोश्च तिन्दुकांश्च महाफलान् ।

एतानन्यांश्च विविधान गन्धमादन सानुषु॥48॥

फलैरमृतकल्पै स्तानाचितान् स्वादुभिस्तरून् ।

तथैव चम्पकाशोकान् केतकान् वकुलांस्तथा॥49॥

पुन्नागान् सप्तपर्णाश्च कर्णिकारान् सकेतकान् ।

पाटलान् कुटजान् रम्यान्मन्दारेन्दीवरांस्तथा॥50॥

पारिजातान् कोविदारान् देवदारुद्रुमंस्तथा ।

शालांस्तालांतमालांश्च पिप्पलान् हिङ्गुकांस्तथा॥51॥

शाल्मलीः किंशुकाशोकाञ्छिशाः सरलांस्तथा ।

चकोरैः शतपत्रैश्चभृङ्गराजैस्तथा शुकैः॥52॥

(महाभारत : वनपर्व यक्षयुद्धपर्व : अध्याय 158)

“उनके साथ द्रौपदी तथा पूर्वोक्त ब्राह्मण भी थे। वे विहंगों की श्रवण-सुखद मादक एवं मोदक वाणी श्रवण करते हुए तथा समस्त ऋतुओं के पुष्पों तथा फलों से

सुशोभित एवं उसके भार से झुके हुए वृक्षों का अवलोकन करते हुए आगे बढ़े। आम, आमड़ा, भव्य नारियल, तेंदू, मुंजातक, अंजीर, अनार, नीबू, कटहल, लकुच (बड़हर), मोच (केला), खजूर, अम्लबेंत, पारावत, क्षौद्र, सुन्दर कदम्ब, बेल, कैथ, जामुन, गंभारी, बेर, पाकड़, गूलर, बरगद, पीपल, पिण्ड खजूर, भिलावा, आँवला, हर्रे, बहेड़ा, इङ्गुद, करौंदा तथा बड़े फलवाले तिंदुक तथा अन्य अनेकों प्रकार के वृक्ष गंधमादन पर्वत के शिखर पर मस्ती में झूम रहे थे। वे अमृत के समान फलों से लदे थे। इसी प्रकार चम्पा, अशोक, केतकी, बकुल (मौलशिरी), पुन्नग (सुलताना चम्पा), सप्तपर्ण (छितवन), कनेर, केवड़ा, पाटल, कुटज, सुन्दर, मन्दार, इन्दीवर (नील कमल), पारिजात, कोविदार, देवदारु, शाल, ताल, तमाल, पिप्पल, हिङ्गुक, सेमल, पलाश, अशोक, शीशम तथा सरल आदि वृक्षों को देखते हुए पाण्डव आगे बढ़ रहे थे।”

इसके साथ ही पाण्डवों ने अनेकों प्रकार के पक्षियों के कल-कूजन से परिव्याप्त वन प्रदेश का आनन्द उठाया। उन पक्षियों में चकोर, मोर, भृङ्गराज, तोते, कलविङ्क (गौरैया), हारीत (हारिल), चकवा; जलचर पक्षियों में कादम्ब, चक्रवाक, कुरुर, जल-कुक्कुट, कारण्डव, प्लव, हंस, वक, मद्गु, भृङ्गराज, उपचक्र, लोहपृष्ठ आदि प्रमुख थे। कहीं झरनों से जल की मोटी और तीव्र धारा पर्वत के सर्वोच्च शिखरों से लगातार गिर रही थी।

(महाभारत : उपरिवत)।

रामायण और महाभारत दोनों ही में प्रकृति-पर्यावरण के मृदुल और कठोर दोनों ही रूप रखे गए हैं जो जीवन के अविचल सत्य हैं और इन्हीं के सान्निध्य में प्रेम, संघर्ष और संरक्षण के साथ जीवन की यात्रा होती है। सीता के अपहरण के पश्चात राम का मन अपार वेदना से भर उठा है। पम्पा सरोवर में पक्षियों को उल्लासरत देखकर उनका मन और भी व्यथित हो उठता है। वे लक्ष्मण से अपने मन के भाव व्यक्त करते हैं, “पम्पा सरोवर के तट पर पक्षी अनेक झुण्डों में आनन्दमग्न होकर विचरण कर रहे हैं। जलकुक्कुट रति-सूचक कूजन कर रहे हैं। नर कोकिलों की वाणी ऐसी लगती है मानो वृक्ष ही पुकार मचा रहे हों। यह सब मेरी काम-भावना को बढ़ा रहे हैं। लगता है वसंत रूपी आग मुझे भस्म कर देगी। एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर, एक पर्वत से इतर पर्वत पर तथा एक वन से दूसरे वन में जाती हुई हवा फूलों के रस-गंध से मन को आनन्दित कर रही है।”

(वा. रा. किष्किंधाकाण्ड : सर्ग 1)

वर्षाऋतु में तो वन प्रदेश अलग ही रूप धारण कर लेता है। यह उसके ऊर्जा संचयन का काल है जो प्रथम दृष्टि में भयावह और आक्रामक भले लगता हो परन्तु यह पर्यावरण को अधिक जाग्रत कर जीवनी-शक्ति से भर देता है

जैसे युद्धभूमि में मतवाले गजराजों का दल चिध्याड़ता है, वैसे ही शिखरों सी आकृतिवाले बादल जोरों से गर्जन कर रहे हैं। इन मेघराजों पर चमकती हुई बिजलियाँ पताकों सी फहरा रही हैं। गर्भ धारण के लिए आकाश में आनन्दमग्न उड़ती

बलाकाओं की पंक्ति ऐसी लगती हैं मानो आकाश के गले में श्वेत कमलों की माला हिल रही हो। पहाड़ी नदियाँ वर्षा के जल को बड़ी तेजी के साथ बहाए लिए चली जा रही हैं।

शीघ्र प्रवेगा विपुलाः प्रपाता  
निर्धौत शृङ्गोपतला गिरीणाम्।  
मुक्ताकलापप्रतिमाः पतन्तो  
महागुहोत्सङ्गतलैर्ध्रियन्ते॥50॥

(वा.रा. किष्किंधाकाण्ड : सर्ग 28)

“पर्वत से विशाल संख्या में तीव्र गति से मोती की मालाओं से झरते हुए झरनों ने शिखरों के नीचे के प्रदेशों को धोकर साफ कर दिया है। पर्वत से झरते हुए उन झरनों को बड़ी-बड़ी गुफाओं ने अपनी गोद में ले लिया है।”

प्रकृति चित्रण हमारे हृदय को तरल, कोमल एवं रसमय बनाता है। यह हमारे भीतर अपने परिवेश एवं प्रकृति के प्रति समरसता उत्पन्न करने में सहायक होता है क्योंकि प्रकृति चित्रण में मानव मन की विविध भाव छवियों का सन्निवेश किया जाता है। हर्ष के क्षणों में प्रकृति अपने राशि-राशि फूलों में खिलकर अपना हर्ष व्यक्त करती है और वियोग के क्षणों में आँसू बहाती है। प्रकृति के इन रम्य चित्रणों ने मानव मूल्यों को क्षति से बचाया है और मनुष्य को दिग-दिगन्तरों में अपनी संवेदना के विस्तार में सहायता की है। हृदय की इसी द्रवणता से उसने निसर्ग के लघु से लघु प्राणियों के प्रति भी अपना ममत्व लुटाया है। वह ऐसी ही कविताओं की सहायता से दूसरों के दिलों की धड़कनों से अपनी धड़कनें मिलाने में सफल हुआ है। युगों तक उसकी संवेदना के अक्षत विस्तार में नदियों के कलकल निनाद, पर्वतों के उच्च शीर्ष पर वायु में झूमते गाते वृक्षों, झरनों के उच्छल आवेगपूर्ण प्रवाह, नदियों की मणिवत निर्मलता और जलचर महालय महासागरों की उत्ताल तरंगों से अपने प्राणों की तरंगें मिला-मिलाकर सभ्यता और संस्कृति की राहें तय करता हुआ, समय पथ की यात्रा में समर्थ रहा है। खेद की बात है कि सभ्यता के आचरणमान के परिवर्तन के साथ-साथ कविता में प्रकृति के कोमल तत्त्वों का अभाव होता गया है और यथार्थीकरण के नाम पर उसमें ढेर-सा कूड़ा-कचरा जमा हुआ है। आज हमारी नई पीढ़ी के सामने प्रकृति मात्र एक उपयोगिता की वस्तु के रूप में परोसी जाती है। प्रकृति आज या तो बेचकर कमाने की चीज है या खरीद कर खाने की। अप्रत्यक्षतः यह पर्यावरण के प्रति हमारी आत्मीयता को कमतर कर उसे भी कमाऊ चीज में बदलने में अधिक विश्वास रखता है। फलतः पर्यावरण की अपूरणीय क्षति ने हमें भी विनाश के कगार पर ला छोड़ा है। आवश्यकता इस बात की है कि हमारे प्रारम्भिक पाठ्यक्रमों में प्रकृति और परिवेश के प्रति आकर्षण एवं आत्मीयता उत्पन्न करनेवाले अंश अधिक-से-अधिक शामिल किए जाएँ।

## तत्कालीन अस्त्र-शस्त्र और पर्यावरण

किन्तु यह कहना अतिशयोक्ति होगी कि रामायण-महाभारत में सब कुछ ठीकठाक है, उसकी पर्यावरणगत महिमा सर्वथा अक्षत है। रामायण में ऐसे प्रसंगों की कमी नहीं जिनमें पर्यावरण के रम्य विस्तार में विस्फोटक विक्षोभ की सूचना है। दशरथ के राज्यकाल में ही सीमावर्ती क्षेत्रों में रावणवंशियों का प्रभाव बढ़ने लगा था। उनकी सेनाएँ आसपास के वनप्रदेशों में अपनी सेना का विस्तार करने लगी थीं, जिससे जीवनमूल्य ही नहीं, पर्यावरण को भी क्षति पहुँचने लगी थी। स्वयं विश्वामित्र जैसे प्रभाव-सम्पन्न ऋषि अपना यज्ञ-कार्य सम्पन्न करने में असमर्थ हो रहे थे और इस कार्य के लिए उन्हें दशरथ के पुत्र राम-लक्ष्मण की सहायता की आवश्यकता हुई। राम के वनवास के समय भी अन्य ऋषियों ने इन त्रासद स्थितियों की चर्चा करते हुए राम से राक्षसों के विनाश का अनुरोध किया। ये शक्तियाँ उस समय तक कितनी प्रचण्ड हो चुकी थीं इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि भरत जब राम से मिलने चित्रकूट में गए तो उन्हें अपनी विशाल सेना के साथ जाना पड़ा। इसका सबसे बीभत्स रूप राम की पत्नी सीता के अपहरण में व्यक्त हुआ। सामान्य लोगों के जीवन का कोई इतिहास उपलब्ध नहीं है परन्तु, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उनकी क्या स्थिति होगी।

दशरथ द्वारा उनके बलाबल के बारे में पूछने पर विश्वामित्र उन्हें बताते हैं कि, “रावण नाम का एक महापराक्रमी राक्षस जो पुलस्त्य का नाती और विश्रवा का औरस पुत्र है, अपनी शक्तियों का चतुर्दिक विस्तार कर रहा है। वह स्वयं यज्ञ में विध्वंस नहीं करता, बल्कि उसकी प्रेरणा से सुवाहु एवं मारीच नाम के दो महापराक्रमी राक्षस यह कार्य करते हैं।” (वा.रा. बालकाण्ड : सर्ग-20, श्लोक 17-20)

राम-लक्ष्मण के साथ गंगा पार करते समय विश्वामित्र उन्हें बताते हैं कि प्रचण्ड राक्षसी ताडका मलद एवं करुष जनपदों का निरन्तर विनाश कर रही है। डेढ़ योजन विस्तृत क्षेत्र में उसका जमाव है। उस यक्षिणी ने पूरे प्रदेश को उजाड़ दिया है। लोग उस दिशा की ओर जाने का साहस भी नहीं करते। (बालकाण्ड सर्ग-24 : श्लोक 32)

दण्डकारण्य की स्थिति तो और भी विकट हो चुकी थी। वहाँ रावण की बहन शूर्पणखा की सेना का जमाव था। एक बार उसने खर-दूषण के नेतृत्व में अपने चौदह हजार सैनिक राम से युद्ध के लिए भेजे थे, जिन्हें राम ने मार गिराया। यह लड़ाई एक बार नहीं, बल्कि बाद में त्रिशिर एवं मारीच आदि के साथ भी हुई। इससे समझा जा सकता है कि वहाँ सेना का कितना बड़ा जमाव था। जहाँ सेना होती है वहाँ विशाल संख्या में हाथी-घोड़े भी होते हैं। उनके चलने-फिरने के लिए विशाल अवरोध रहित भूखण्ड भी चाहिए। अग्नि, भोजन सबकी बड़ी व्यवस्था चाहिए। अतः स्थान-स्थान पर इन सैनिक जमावों से भूमि, वन-सम्पदा एवं समग्रता में पूरे पर्यावरण पर कितना

क्षतिपूर्ण प्रभाव पड़ रहा होगा, इसका अनुमान लगाया जा सकता है।

इन युद्धों में भीषण आग उगलने वाले और अस्त्र-शस्त्रों का उपयोग किया गया। कभी हूह भरती अग्नि की वर्षा हुई, तो कभी धूल भरी आँधियाँ चलीं। युद्ध के लिए पर्वतों को तोड़-तोड़कर उनकी चट्टानों की शत्रुओं पर वर्षा की गई। वनप्रांतर रौंद डाले गए। हजारों की संख्या में युद्ध में मारे गए सैनिकों को या तो नदियों-जलाशयों में फेंक दिया गया या खुले में सड़ने के लिए छोड़ दिया गया। जहाँ इतनी बड़ी संख्या में लोग मर कर सड़े हों वहाँ महामारी नहीं फैली हो, यह नहीं माना जा सकता। उन दिनों ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न होती रहती थीं।

भरत जब सपरिवार राम से मिलने के लिए चित्रकूट चले तो उनकी विशाल सेना उनके साथ चली। उस सेना के प्रस्थान के लिए विशद तैयारी की गई। उस सेना के साथ चलनेवाले विशेषज्ञों की चर्चा वाल्मीकि ने इन शब्दों में की है

अथ भूमिप्रदेशज्ञाः सूत्रकर्मविशारदाः।

स्वकर्माभिरताः शूराः खनका यंत्रकास्तथा॥1॥

कर्मान्तिकाः स्थपतयः पुरुषाः यंत्रकोविदाः।

तथा वर्धक यश्चैव सर्गिणो वृक्षतक्षकाः॥2॥

(वा.रा. अयोध्याकाण्ड : सर्ग 80)

“भूमि-प्रदेश के ज्ञाता, सूत्र से नापने के कार्य में कुशल, मार्ग की रक्षादि में कुशल वीर, व्यवस्था करनेवाले, भूमि खोदनेवाले, सुरंग बनानेवाले, नदी पार करने की व्यवस्था करनेवाले, वृक्ष काटनेवाले, रसोइए, चूना पोतनेवाले, बाँस की चटाई, सूप तथा चमड़े का चारजामा आदि बनानेवाले तथा रास्तों की जानकारी रखनेवाले लोग चले।”

इन पूर्णिमा के समुद्र-सी उभरती विशाल सेना के विशेषज्ञों ने उसका मार्ग प्रशस्त करने के लिए बड़े-बड़े वृक्ष समूल उखाड़ डाले। मार्ग में आनेवाले कुएँ मिट्टी से भर दिए। बेलें-झाड़ियाँ उखाड़ डालीं, कहीं-कहीं जल के लिए नई बावड़ियों का निर्माण कर डाला और मार्ग समतल करते हुए आगे बढ़े।

सेना जब भरद्वाज ऋषि के आश्रम के पास पहुँची तो भरत ने उसे आश्रम से कुछ दूरी पर ही रोक दिया और ऋषि से मिलने चले। भरद्वाज ने जब उनकी सेना के बारे में जिज्ञासा की तो भरत ने जो उत्तर दिया वह सैनिकों के आवागमन से होनेवाले प्रभावों पर प्रकाश डालता है। भरत ने कहासेना को सभी देशों में तपस्वी जनों से दूर-दूर चलने का विधान है, क्योंकि उनसे कष्ट होने की सम्भावना रहती है। मेरे साथ श्रेष्ठ घोड़े, मतवाले हाथी तथा विशाल संख्या में स्वस्थ सैनिक हैं जो विशाल भू-भाग को घेर कर चलते हैं। उनसे आश्रम के वृक्ष, पशु-पक्षी एवं पर्णशालाओं को हानि पहुँच सकती है, इसलिए अकेला आया हूँ। (अयोध्याकाण्ड : सर्ग 91)

स्वयं राम को चित्रकूट में सेना के आगमन का बोध तब होता है जब वन के प्राणियों में भगदड़ मच जाती है और चारों ओर व्यग्रता भरा कोलाहल व्याप्त हो जाता है। लक्ष्मण एक ऊँचे वृक्ष पर चढ़कर भरत की विशाल वाहिनी के आगमन को जान पाते हैं।  
(अयोध्याकाण्ड : सर्ग 96)

तात्पर्य यह कि उन दिनों स्थान-स्थान पर सेनाओं का जमाव होने लगा था। सेना के आवागमन से वन्य-जीवन की स्वाभाविकता नष्ट होने लगी थी तथा युद्धों से जन, वन, धन एवं पर्यावरण पर विनाशक प्रभाव पड़ने लगा था।

रामायण काल तक कई महानाशक अस्त्र-शस्त्रों का आविष्कार हो चुका था। वसिष्ठ से संघर्ष में विश्वामित्र ने वरुण, रौद्र, ऐन्द्र, पाशुपत, ऐषीक के अलावा मोहन गान्धर्व, स्वापन, जृम्भण, मादन, संतापन, विलापन, शोषण, विदारण, सुदुर्जय, वज्रास्त्र, ब्रह्मपाश, कालपाश, वरुणपाश, पिनाकास्त्र एवं सूखी-गीली दो प्रकार की अशनि, दण्डास्त्र, पिशाचास्त्र, कौंचास्त्र, धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र, वायव्यास्त्र, मंथनास्त्र, हयशिरा, दो प्रकार की शक्ति, कंकालास्त्र, वैद्यास्त्र, कालास्त्र, कड़कणास्त्र, जैसे अपने घातक प्रभावों के लिए विख्यात अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग किया। परन्तु वसिष्ठ ने इन सारे अस्त्रों को मात्र अपने ब्रह्मदण्ड से समाप्त कर दिया। ब्रह्मदण्ड का प्रयोग करते समय वसिष्ठ जी के शरीर के समस्त रोमकूपों से किरणों की भाँति अग्नि निकलने लगी। वह ब्रह्मदण्ड धूम रहित कालाग्नि सा दहक रहा था।

(बालकाण्ड : सर्ग 56 श्लोक 7-12 एवं 14-15)

सीता-हरण के पश्चात समुद्र पर क्रुद्ध होकर राम ने भी ब्रह्मास्त्र से अभिमंत्रित कर ब्रह्मदण्ड जैसे वाण का प्रयोग किया जिससे पूरा वायुमंडल प्रकम्पित हो उठा :

प्रचकाशे तदाऽऽकाशमुल्काशतविदीपितम् ।  
अन्तरिक्षाच्च निर्घाता निर्जग्मुरतुलस्वन्॥9॥

×××

दिवि च स्म महामेघाः संहताः समहास्वनाः॥11॥

मुमुचुर्वैद्युतानग्नींस्ते महाशानयस्तदा ।  
यानि भूतानि दृश्यानि चुकुशुश्चाशनेः समम्॥12॥

अदृश्यानि च भूतानि मुमुचुर्भैरवस्वनम् ।  
शिशियरे चाभिभूतानि संत्रस्तान्युद्धिजन्ति च॥13॥

सम्प्रविव्यथिरे चापि न च पस्पन्दिरे भयात् ।  
सह भूतैः सतोयोर्मिः सनागः सहराक्षसः॥14॥

सहसाभूत् ततो वेगाद् भीमवेगो महोदधिः ।  
योजनं व्यतिक्राम वेलामन्यत्र सम्प्लवात्॥15॥

(युद्धकाण्ड : सर्ग 22)

“(उस ब्रह्मदण्डवत वाणयुक्त धनुष के खींचे जाते ही) आकाश में अनेकों उल्काएँ प्रज्वलित हो गईं। प्रकाश फैल गया और अन्तरिक्ष से भारी गड़गड़ाहट के साथ वज्रपात होने लगा। आकाश में महान वेगशाली वज्र गड़गड़ाहट के साथ टकरा कर वैद्युतिक अग्नि की वर्षा करने लगे। दृश्य प्राणी अदृश्य हो गए। बिजली की कड़क के समान शब्द होने लगे। कई अभिभूत होकर धराशायी हो गए। कई भयभीत और उद्धिग्न हो उठे। कितने ही व्यथा से व्याकुल हो गए। कितने ही भीतित्रस्त होकर जड़वत हो गए। समुद्र अपने भीतर निवास करनेवाले सर्पों, राक्षसों के साथ बिना प्रलयकाल के इतनी तीव्रता से तरंगायमान हो गया कि वह अपनी सीमा का अतिक्रमण करता हुआ एक-एक योजन आगे बढ़ गया।”

और राम ने जब वह वाण छोड़ दिया तो :

ननाद च तदा तत्र वसुधा शल्यपीडिता ।  
तस्माद् व्रणमुखात् तीयमुत्पपात रसातलात्॥37॥  
स वभूव सदा कूपो व्रण इत्येव विश्रुतः ।  
शततं चोत्थितं तोयं समुद्रस्येव दृश्यते॥38॥  
अवदारणशब्दश्च दारुणः समपद्यत ।  
तस्मात् तद् वाणपातेन अपाः कुक्षिष्वशोषयत्॥39॥

(युद्धकाण्ड : सर्ग 22)

“वज्र और अशनि के समान तेजस्वी वह वाण जिस स्थान पर गिरा वह स्थान उसके प्रभाव के कारण दुर्गम मरुस्थली के नाम से प्रसिद्ध हो गया। उस वाण से पीड़ित वसुधा आर्तनाद कर उठी। उस वाण के आघात से उसमें छिद्र हो गया जिसमें से रसातल का पानी वेग से ऊपर आने लगा। वह छिद्र कुएँ के आकार का हो गया और व्रण नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस कुएँ से सदा जल निकलता रहता है जो समुद्र जैसा ही दिखाई पड़ता है। उस समय वहाँ भूमि के विदीर्ण होने का स्वर सुनाई पड़ा। राम ने उस वाण से भूतल की कुक्षि में उपलब्ध जल सुखा दिया।”

जनक के यहाँ शिव के द्वारा दक्ष के यज्ञ के विध्वंस के लिए प्रयुक्त धनुष भी असाधारण था। राम के द्वारा प्रत्यंचा चढ़ाते समय ही जब वह बीच से टूट गया तब उससे निकलने वाली ध्वनि साधारण नहीं थी :

तस्य शब्दोमहानासीन्निर्घातसमनिः स्वनः ।  
भूमिकम्पश्च सुमहान् पर्वतस्येव दीर्यतः॥18॥

(बालकाण्ड : सर्ग 67)

“उससे बज्रपात के समान महानाशक आवाज हुई। लगा जैसे कोई पर्वत फट

पड़ा हो। उस ध्वनि से भूकम्प आ गया।”

स्पष्ट है कि ये अस्त्र-शस्त्र आणविक क्षमता से सम्पन्न थे, जिनका प्रभाव अत्यन्त नाशकारी था। वे दूरवर्ती भूभाग को भी पूरी तरह विध्वस्त कर डालने में सक्षम थे। राम ने परशुराम के द्वारा चुनौती देने पर उन्हीं के धनुष से उनका एक पूरा लोक ही नष्ट कर दिया था। महाभारत में परशुराम के धनुष को भीष्म ने ‘अददानो महाबाहुः कार्मुकं ताल संनिभम्।’ (उद्योगपर्व अम्बोपाख्यान : अध्याय 182 : श्लोक 26) कहा। भीष्म के साथ होनेवाले युद्ध में परशुराम ने कुछ ऐसे तेजस्वी वाणों का प्रयोग किया ‘जिससे प्रलय कालीन बारह सूर्यों के भयंकर तेज सी अग्नि धधकती हुई अनेक रूपों में प्रकट हो गई।’ (उद्योगपर्व : अध्याय 181, श्लोक-8)

विश्वविश्रुत अर्जुन के गाण्डीव की चर्चा महाभारतकार ने इन शब्दों में की है

अत्र चैतन्महावीर्ये धनुः पार्थस्य गाण्डिवम् ॥5॥

एवं शतसहस्रेण सम्मितां राष्ट्रवर्धनम्।

व्यायाम सहमत्यर्थे तृणराजसमं महत ॥6॥

(विराटपर्व / गोहरपर्व : अध्याय 40)

“यही अर्जुन का महान क्षमता सम्पन्न धनुष गाण्डीव है। यह अकेला ही एक लाख धनुषों के समान है। यह राष्ट्र की समृद्धि में समर्थ अर्जुन के बल को सहन करनेवाला एवं ताड़ के समान विशाल है।” अर्जुन का यह महान क्षमता से सम्पन्न धनुष सोना पिघला कर बनाया गया था। महाभारत के विकराल युद्ध में इससे न जाने कितने प्राणहारी वाण चले।

रामायण से महाभारतकाल तक कालपुरुष की यात्रा भयंकर से भयंकरतम होती चली गई है। इन युद्धों में तब से अब तक न जाने कितने वन उजड़े, न जाने कितनी नदियों का पानी सड़े मुर्दों से विषाक्त हुआ, न जाने विध्वंसक वाणों के प्रभाव से धरती कहाँ-कहाँ बंजर हुई। न जाने वायुमंडल में कितनी भयावह विष की आँधियाँ चलीं, न जाने कितने पशु-पक्षियों की प्रजातियाँ सदा-सदा के लिए विनष्ट हो गईं।

महाभारत में वर्णित जनमेजय का नागयज्ञ एक प्राणी विशेष के संहार का असाधारण उदाहरण है, जिसमें नाग जाति की न जाने कितनी प्रजातियाँ सदा के लिए जल कर खाक हो गईं। इसी प्रकार अर्जुन द्वारा खाण्डवप्रस्थ का अग्निदाह मनुष्य द्वारा प्रकृति के विरुद्ध आयोजित विनाश का दूसरा ऐतिहासिक उदाहरण है। खाण्डवप्रस्थ में अर्जुन का गाण्डीव अपने भयावह वाणों की निरन्तर वर्षा करता रहा और वह योजनों तक फैला हुआ वन, जो अनेकानेक प्राणियों का आश्रयस्थल था, धू-धूकर जलता रहा। महाभारतकार ने इस स्थिति का चित्रण इन मार्मिक शब्दों में किया है, “अर्जुन के वाणों से खाण्डव वन धधक उठा। उसमें निवास करनेवाले लाखों वन्य प्राणी चीत्कार करने लगे। बहुत से प्राणियों के शरीर का कोई एक भाग जल गया,

कई उस अग्नि में पूर्णतः झुलस गए। कितनों की आँखें फूट गईं, कितनों के शरीर पूर्णतः विदीर्ण हो गए। कोई अपनी प्रिय संतान को खुद से चिपकाए था, कई भाइयों से चिपके थे जो मोहवश एक-दूसरे का साथ न छोड़ सके वे वैसे ही जलकर राख हो गए। जलाशय काढ़े की भाँति खौल गए और उसमें निवास करनेवाले जलचर निष्प्राण हो गए। तभी वर्षा होने लगी। आग की लपटों पर वर्षा के प्रभाव से चारों ओर गाढ़ा धुआँ उठने लगा और उसने पूरे आकाश को घेर लिया। कई महीनों तक चलनेवाले इस अग्नि दाह में न जाने कितने प्राणी सदा के लिए स्वाहा हो गए।”

रामायण और महाभारत इस प्रकार की दुस्सह स्थितियों के चित्रण से भरे पड़े हैं। आज पर्यावरण की दृष्टि से हम जिन विषाक्त, मारक एवं आत्यन्तिक स्थितियों में पहुँच गए हैं, उसकी राह हमारे सुदूर अतीत तक जाती है। यदि हमारे पूर्वजों ने जीवन के महोत्सव का आयोजन विशाल-विराट हरीतिमा के खुले प्रांगण में पशु-पक्षियों के कल-कूजन, झरनों के अप्रतिहत प्रवाह और भिन्न-भिन्न ऋतुओं के साथ हँसते-खिलखिलाते फूलों के बीच किया था, तो कारण चाहे आत्मरक्षा का रहा हो या आत्म-विस्तार का, उनके आपसी युद्ध, उनके नए-नए घातक आविष्कार, पर्यावरण को भी क्षति अवश्य पहुँचाते रहे।

## प्राप्ति-स्वीकार पत्रिकाएँ

**रचनाकर्म** (साहित्य-सर्जन एवं चिंतन की त्रैमासिक पत्रिका), सम्पादक: डॉ. मायाप्रकाश पाण्डेय, वर्ष-3, अंक-3-4, जुलाई-दिसम्बर 2005, प्रकाशक: शील प्रकाशन, आनन्द-388001 (गुजरात); मूल्य: 40/- रुपए, पृष्ठ: 152.

**कल्पान्त** सम्पादक: मुरारीलाल त्यागी, स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं प्रधान सम्पादक: मुरारीलाल त्यागी बालाजी ऑफसेट प्रिंटर्स, 12315/21, शहजादा बाग, दयाबस्ती, दिल्ली-35 से प्रकाशित; मार्च 2006; मूल्य: 10/- रुपए, पृष्ठ: 34.

**सतयुग की वापसी** (भारतीय पक्ष विशेषांक) फरवरी 2006, प्रकाशक, सम्पादक एवं मुद्रक: मुरारीलाल अग्रवाल; सूर्य प्रिन्टर्स, 38, लखंडावाला, पुराने विजली घर के पीछे, अलवर-301001, मूल्य: 10/- रुपए, पृष्ठ: 23.

# मुहम्मद के कार्टून: कुछ असुविधाजनक प्रश्न

शंकर शरण\*

हम तो सभी को अपना मित्र या भाई मान कर उन के लिए और उन के आचार-विचार, उन की संस्कृति के लिए पलक-पाँवड़े बिछाते रहें और यह सवाल पूछना भी भूल जाएँ कि वे कहीं तक हमें अपना मित्र मान रहे हैं, उन के देश में कहीं तक हमारी संस्कृति और हमारे विचारों के प्रति सम्मानअथवा ग्रहणशीलता बढ़ी है, ...यह केवल अपने को धोखा देना है और कहीं-कहीं तो आत्मसम्मान बेचने का भी पर्याय हो जाता है। अज्ञेय

एक डेनिश अखबार जिलेंद्र पोस्तेन में छपे मुहम्मद के कार्टून पर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हुई हिंसा अब थम गई है। पर इस ने एक मुखर-मौन बहस को जन्म दिया है, जो शीघ्र खतम होने वाली नहीं। इस विवाद सेअनेकानेक प्रश्न उभरे हैं। कई तो पुराने हैं जिन पर भी चर्चा नहीं होती थी। पर कई नए, असुविधाजनक प्रश्न भी उभरे हैं। इन का समाधान खोजा ही जाना चाहिए। असुविधाजनक प्रश्नों से कतराना स्वतंत्र भारत में बुद्धिजीवी वर्ग की विशेषता रही है। किंतु इस का परिणाम अंततः अच्छा नहीं होता। लेव टॉल्स्टॉय के शब्दों में कहें तो असुविधाजनक प्रश्न 'जीवित घाव' की तरह होते हैं, जिन्हें छिपाने के बदले शीघ्रतर सामने लाना चाहिए।

इन कार्टूनों की पृष्ठभूमि द्रष्टव्य है। पूरे यूरोप में सर्वोच्च सत्ताधीश, महारानी, पोप, आदि उच्च-विभूतियों के कार्टून छापने का चलन सामान्य रहा है। सेक्यूलर शासन और उदार लोकतांत्रिक परंपरा मेंकिंसी का कार्टून बनाना उस का अपमान नहीं माना जाता। यदि इस्लामी देशों में हर चीज इस्लामी नजरिए से चलती है, तब यूरोप में आलोचनात्मक नजरिए से जीवन चलना उतना ही सामान्य समझना चाहिए। जो चीज इस्लामी समाज की वर्जना है, वह गैर-इस्लामी समाज की वर्जना भी हो, यह कैसे न्यायोचित है? लेकिनइसी जिद पर दुनिया में अनेक स्थानों पर हिंसा हुई। प्रत्युत्तर में, अपनी अभिव्यक्ति स्वतंत्रता पर बल देने के लिए यूरोपीय मीडिया में कई पत्रों ने

\* लेखक राष्ट्रीय शैक्षिक शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् में राजनीति विज्ञान के प्राध्यापक हैं।

कार्टूनों को पुनः दिखाया। यद्यपि अमेरिकी और भारतीय मीडिया ने उसे प्रकाशित नहीं किया। वैचारिक स्वतंत्रता वाले देशों, संस्थानों द्वारा ऐसी सावधानी बरतने में किसी सिद्धांत के बजाए भय का कारक ही अधिक रहता है। यद्यपि दूसरे धर्मों के प्रति संवेदनशीलता उचित है, परन्तु यह भावना थोपी नहीं जा सकती।

वैसे इन कार्टूनों में कोई अनोखापन नहीं था। एक में मुहम्मद के साफे को बम की तरह दिखाया गया था। इस्लामी आतंकवादियों, फिदायीन दस्तों, उन के रहनुमाओं के विचारों, विवरणों, समाचारों के समक्षकार्टून में कोई नयापन न था। एक अन्य कार्टून में इस्लामी वेष में दो स्त्रियों के समक्ष मुहम्मद खड़े हैं। स्त्रियाँ चादर में ढँकी हैं जिनकी आँखें दो दरारों से दिख रही हैं। मुहम्मद के चेहरे पर भी आँखों के स्थान परऐसी ही दरार है। संदेश यह कि इस्लाम महिलाओं के प्रति विचित्र, नीची नजर रखता है। यह बात विचार-विमर्श में कही ही जाती है। स्वयं कुछ मुस्लिम बुद्धिजीवियों में इस पर चर्चा होती है।

दुनिया भर के मुस्लिमों ने सितंबर 2005 से जनवरी 2006 तक कई बार यह कार्टून देखे थे। अरब देशों में पिछली अक्टूबर में ही यह कार्टून देखे जा चुके थे। मिश्र में भी तीन पत्रिकाओं और एक अखबार नेइन्हें समाचार के तौर पर पुनःप्रकाशित किया था। वहाँ के एक साप्ताहिक पत्र *अल-फ़य़* ने नवंबर में ही वे कार्टून छापे थे। उस के संपादक अदेल् हमूदा की यह टिप्पणी बड़ी सारगर्भित है, "जिन्होंने वह कार्टून देखे, उन्होंने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। प्रतिक्रिया करनेवाले वे हैं जिन्होंने उसे देखा भी नहीं।" चार महीनों मेंयूरोप, अरब, एशिया में लाखों मुसलमान उन्हें देख चुके थे। किसी ने उसे ध्यान देने लायक भी नहीं समझा। न कहीं हिंसा या विरोध भड़का। किंतु कुछ मुट्ठी भर इस्लामी नेताओं को यह बात ठीक नहीं लगी और उन्होंने इस्लामी संगठनों, सरकारों को सप्रयास उकसाया।

नवंबर में डेनमार्क के एक उग्रपंथी इमाम अबू लाबेन ने अरब में इस बात पर लामबंदी करने के लिए बाकायदा एक प्रतिनिधि मंडल भेजा। इस प्रतिनिधिमंडल के पास 43 पृष्ठों की एक फाइल थी जिन में वह कार्टून और कई अन्य भड़काऊ रेखा-चित्र भी थे। उस फाइल में शामिल कई कार्टून कहीं प्रकाशित भी नहीं हुए थे, न उन की प्रमाणिकता ही स्पष्ट थी कि किस ने उन्हें बनाया? पर यह सारी भड़काऊ सामग्री लेकर अरब में उग्रवादी प्रचारकों को भेजा गया। तब मक्का में अनेक मुस्लिम देशों के प्रतिनिधियों ने बयान जारी कर कार्टूनों की निंदा की। फिर जनवरी के अंत में मक्का की मस्जिद से एक इमाम ने आह्वानकिया कि 'जिस ने पैगम्बर का अपमान किया, उसे मार डालना चाहिए'। तब सऊदी अरब में डेनमार्क के सामानों का बहिष्कार आरंभ किया गया और सऊदी सरकार ने डेनमार्क से अपना राजदूत वापस बुला लिया।इस के बाद ही दुनिया भर की इस्लामी जमातों में हिंसा की प्रतियोगिता आरंभ हुई। काबुल में विरोध प्रदर्शनों में ईसाइयों और यहूदियों के विनाश का आह्वान

किया गया। दमिश्क में डेनमार्क और नार्वे के दूतावास जला दिए गए। उस के दूसरे दिन बेरूत में डेनमार्क कोंसुलेट में आग लगाई गई। तेहरान में डेनमार्क और ऑस्ट्रिया के दूतावासों पर हमला बोला गया। पाकिस्तान में उत्पात, विध्वंस और मौतें हुईं। तब भारत में भी इस्लामी नेता पीछे नहीं रहे, आखिर उन्हें भी दिखाना था कि वे भी मुसलमान हैं! कृपया विचारें, यह पूरी प्रक्रिया प्रायोजित एवं कृत्रिम लगती है।

किंतु दुर्भाग्यवश इस पर ऊँगली न उठाकर दुनिया भर के गैर-मुस्लिम नेताओं, बुद्धिजीवियों ने भी कहा कि उन कार्टूनों का प्रकाशन गलत था। ध्यान दें, यह उन्होंने सितंबर से जनवरी तक नहीं कहा था! जब विरोध एवं हिंसा शुरू हुई तब कहा। अर्थात्, उन की टिप्पणी दबाव एवं अवसरवादिता से प्रभावित होकर आई। क्या यह 'हिंसा एवं दबाव के तर्क' को स्वीकृति देना नहीं है? निश्चय ही दुनिया भर के सेक्यूलर-उदार नेताओं, संपादकों को यह प्रश्न भी पूछना चाहिए था कि क्या इस्लाम के पास हिंसा के अलावा किसी विषय पर, कभी, कोई तर्क नहीं है? कहीं कोई किताब लिखे तो हिंसा (इंग्लैंड), कोई फिल्म बनी तो हिंसा (हॉलैंड), रेखाचित्र बने तो हिंसा (डेनमार्क), समाचार छपे तो हिंसा (भारत), बयान आए तो हिंसा (सूडान), आदि। इस्लामी प्रतिनिधियों के पास शब्दों का उत्तर शब्दों या तर्कों में नहीं है। इस्लामी प्रतिनिधि तथा समर्थक यह नहीं समझते कि हिंसा एवं दबाव की नीति अपनाकर वे पाश्चात्य आरोप - कि इस्लाम एक हिंसक धर्म है - की पुष्टि करते हैं।

पिछले कुछ महीनों से ईरानी राष्ट्रपति अहमदीनेजाद संपूर्ण यहूदी समुदाय के विरुद्ध कई बार गालियों और भड़कावाभरे शब्दों का प्रयोग कर चुके हैं। उन्होंने इजराइल को दुनिया के नक्शे से मिटा देने का आह्वान किया है। कार्टून बनाने वाले की मौत के कई आह्वान हो चुके हैं - भारत से भी। इस से पहले अफगानिस्तान में इस्लामी शासक भगवान बुद्ध की ऐतिहासिक प्रतिमाओं को विस्फोटकों से उड़ा चुके हैं। लंबे समय से दुनिया भर में अबू हम्जा जैसे अनेक मौलवी ईसाइयों व 'काफिरों' के विरुद्ध डंके की चोट पर विष-वमन और हिंसा का निरंतर आह्वान कर रहे हैं। चाहे इन सबसे यहूदियों, बौद्धों, हिंदुओं या ईसाइयों की भावनाओं को कितनी ही चोट क्यों न पहुँचे, यह सब इस्लामी नेताओं को सहज लगता है। किंतु उन के लिए अमान्य रेखा-चित्र भी यदि कोई खींचे तो उन के दोष का ठिकाना नहीं रहता। यह दोहरापन कब तक चलेगा? क्या इस्लाम के प्रतिनिधि इस पर कभी विचार करेंगे?

क्या कभी आकलन हुआ है कि दुनिया भर के इस्लामी मीडिया में यहूदियों, ईसाइयों के धार्मिक प्रतीकों तथा अमेरिका, इजराइल के ऊपर कितने कुत्सापूर्ण कार्टून छपते रहे हैं? केवल ईरान या पाकिस्तान के अखबारों पर ही नजर डालें तो एक से एक ऐसे चित्रांकन मिलते हैं। उन चित्रों का भारत में पुनर्प्रकाशन तो दूर, उन का शाब्दिक विवरण या उस की आलोचना भी छापने से हमारे संपादक दूर भागते हैं! उन चित्रांकनों से मुस्लिम नेताओं को कोई कचोट महसूस नहीं होती। वह सब अरब देशों

की सरकारों द्वारा स्वीकृत है। किंतु यूरोपीय मीडिया में यूरोपीय मानदंडों से विषयों का चित्रण उन्हें नागवार है।

यह नहीं कि कार्टून बनने से रोष भड़का। इस्लामी प्रवक्ताओं के अनुसार यदि प्रशंसात्मक भाव से भी मुहम्मद का चित्र बनाया जाता, तब भी बात वही होती। अर्थात् गैर-मुस्लिम समाज को इस्लामी विषयों पर सम्मान व अपमान के वही मानदंड अपनाने होंगे, जो मुस्लिम रखते हैं। तब ईसाई, बौद्ध या हिंदू विषयों पर मान-अपमान का वही तर्क मुस्लिम समाज क्यों नहीं अपनाता? उसे इस्लामी देशों में बुद्ध मूर्तियाँ, मंदिर तोड़ने या हिंदू देवी-देवताओं की तस्वीर नष्ट करने, हिंदू त्योहार मनाने पर सजा देने, का क्या अधिकार है? पाकिस्तान में कुरान तथा पैगम्बर के अपमान का मामला ब्लासफेमी कानून के अन्तर्गत आता है। परन्तु अन्य धर्मों को यह सुरक्षा प्राप्त नहीं है। तब क्या मामला, मान-अपमान का न होकर, शक्ति के दबदबे का तो नहीं है?

ऑक्सफोर्ड के जाने-माने मुस्लिम प्रोफेसर तारिक रमादान ने स्वीकार किया है कि यह कोई बहस का विषय नहीं, बल्कि 'पावर-स्ट्रगल' है। क्या मामला सचमुच शक्ति का है? यदि आप के पास शक्ति है, बात-बात में आग लगा देने वाले नेता और आत्मघाती दस्ते हैं तो आपकी बातों पर भी आदर दिखाया जाएगा। किंतु संवेदनाओं का सम्मान एकतरफा नहीं हो सकता। यदि पैगम्बर इस्लामी विश्वास के विषय हैं तो यहूदियों का इजराइल, भगवान बुद्ध, मूर्ति-पूजा और राम जन्म-भूमि भी उतने ही पवित्र विश्वास हैं।

कार्टून-विवाद ने दुनिया भर में मुसलमानों और गैर-मुसलमानों के बीच की खाई को बढ़ाया है। चाहे इसके पीछे दोनों तरफ के अज्ञान, गलतफहमियाँ, राजनीतिक दौंव-पेंच, मौकापरस्ती आदि की भी भूमिका है, लेकिन इस से मूल बात पर पर्दा नहीं डाला जा सकता कि इस्लामी समुदाय मजहबी मान-सम्मान के सवाल को विभिन्न धर्मों के बीच समानता के आधार पर नहीं, वरन अपने विशेषाधिकार के रूप में तय करना चाहता है। दुनिया के सभी धर्मों, मजहबों के बीच इस्लाम एक तरह से अपने लिए 'वीटो' का सा दावा करता है कि जो उसे नामंजूर, वह कोई न करे, किंतु जिस में दूसरे मजहबों, धर्मों का अपमान हो या जोगैर-इस्लामी समाजों को अस्वीकार्य हो, उसे कुछ नहीं कहना है।

इस्लामी नेताओं द्वारा बायमियान की ऐतिहासिक बुद्ध प्रतिमाओं के विध्वंस को उचित ठहराना, इजराइल या अमेरिका को मिटा देने का आह्वान करना या इस्लामी प्रदर्शनों में ईसाई-यहूदी श्रद्धा प्रतीकों (जैसे, सलीब) को जलाना, अबू हम्जा जैसे कई विश्व-विख्यात इमामों द्वारा 'अकारण ही काफिरों की हत्या करने' के खुले आह्वान, गैर-इस्लामी देशों में मुसलमानों के लिए अलग कानून, अदालतों आदि की माँग इस के कुछ बड़े उदाहरण हैं। सभी प्रसंग यही दिखाते हैं कि इस्लाम को विशेषाधिकार चाहिए। यही अधिकार वह दूसरे धर्मों एवं प्रतीकों को देने को तैयार नहीं है। इस से

कतराना, और मसले को बेबाक न रखना मुस्लिमों के हित में भी नहीं है। इसलिए इस पर मुस्लिम समुदाय को संजीदगी से सोचना पड़ेगा। अपनी मान्यताओं को दूसरों पर थोपा नहीं जा सकता। कार्टूनो के संबंध में पाश्चात्य मानसिकता ‘वैचारिक स्वतंत्रता’ से कम और इस्लाम को एक हिंसक धर्म के रूप में दिखाना अधिक लगता है। मुस्लिम समुदाय के लोग इस जाल में आँख मूँद कर कूद गए हैं। उन्हें अपनी धार्मिक मान्यताओं के विषय में नए सिरे से तथा उदारतापूर्वक सोचना पड़ेगा कि उनकी यह संवेदनशीलता तथा प्रतिक्रिया उनके हित में है या नहीं? क्या एक कार्टून बनाने वाला अपनी व्यक्तिगत मानसिकता से एक बड़े धर्म तथा उसके पैगम्बर की महानता को हानि पहुँचा सकता है? क्या ऐसे लोगों तथा सम्पादकों को इतना महत्त्व देना उचित है? दोनों तरफ के संकुचित मानसिकता के लोगों की उपेक्षा करना ही उचित है। भावनात्मक संतुलन अपरिहार्य है।

यह एक निपट अज्ञानपूर्ण या जबरदस्ती का दावा ही है कि पैगम्बर का चित्र बनाना इस्लाम का अपमान है। इस विवाद के बाद चर्चा में यह बार-बार सामने आया कि पिछली शदियों में इस्लामी चित्रकारों द्वारा पैगम्बर के अनेक चित्रांकन हुए हैं। अज्ञान एवं जिद के कारण ही इस्लामी नेताओं द्वारा मुसलमानों को बरगलाना आसान होता है। अतः इस्लाम की कुछ रूढ़ मान्यताओं को ढीला करना आवश्यक है। वस्तुतः समय के साथ कई मान्यताएं बदलती भी रही हैं। उसे मुसलमानों ने स्वीकार भी किया है। फोटोग्राफी, संगीत, फिल्में, दाढ़ी, पोशाक, शरीयत कानून, शादी-तलाक के अनेक नियम, मुनाफा कमाने संबंधी वर्जनाएं आदि अनेक विषयों पर कई इस्लामी देशों में मजहबी आदेशों को छोड़ा जा चुका है अथवा संशोधित किया गया है। पैगम्बर के चित्रांकन को ही लें। 14-16 सदी के बीच अनेक इस्लामी बादशाहों, सुलतानों ने इस्लामीविषयों की खूब पेंटिंगें बनवाई थीं। उन में मुहम्मद के चित्र भी हैं। एडिनबर्ग विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में 14वीं सदी की ईरानी पेंटिंग है जिस में मुहम्मद का जन्म दिखाया गया है। 15वीं सदी में अफगानिस्तान के तैमूरी शासक (बाबर के पूर्वज) शाहरुख ने हेरात के विद्वान हफीज-ए-अबरू को एक विश्व-इतिहास लिखने को कहा। तैयार पुस्तक में कई चित्र भी थे। उन में एक चित्र में फरिश्ता गैब्रील पर्वत पर मुहम्मद को पहलाइलहाम दे रहा है। ऑटोमन साम्राज्य के बाद शाह मुराद तृतीय ने तुर्की महाकाव्य *सियर-ए-नबी* के लिए असंख्य चित्रांकन करवाए। वह पेंटिंगें मुसलमानों द्वारा ही बनाई भी गई थीं। उन में कुछ को आज भी इस्तांबुल, डबलिन, न्यूयॉर्क के पुस्तकालयों, संग्रहालयों में देखा जा सकता है। इन में कुछ अनुकृतियाँ इंटरनेट पर भी देखी जा सकती हैं। जैसे [www.lacma.org](http://www.lacma.org) और [www.metmuseum.org](http://www.metmuseum.org) पर।

यहाँ यह बात भी चिंतनीय है कि अरब देशों की तुलना में गैर-अरब मुस्लिमों ने ज्यादा रोष दिखाया। विरोध क्रम में हिंसा, आगजनी, मौत और बयानबाजियाँ सब

अधिकांश गैर-अरब देशों में हुई, जब कि आबादी, परंपरा, प्रतिनिधित्व और मजहबी विश्वास के अनुसार भी इस्लाम की प्रमुख और पवित्र भूमि अरब है। किंतु इन कार्टूनो के विरोध में पाकिस्तान, बंगलादेश, अफगानिस्तान, इंडोनेशिया, भारत आदिके मुसलमानों का आक्रोश ही अधिक मुखर रहा। अंतर्राष्ट्रीय मीडिया में प्रदर्शन, नारेबाजियाँ आदि कीतस्वीरें या टेलीविजन फुटेज भी इन्हीं देशों के आए, अरब देशों के नहीं। यहाँ तक कि डेनमार्क का बहिष्कार करने की घोषणा भी एक एसियाई देश ने की, किसी अरब ने नहीं। इस का उत्तर वी. एस. नायपाल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *बियॉड बिलीफ* में प्रमाणिक रूप से दिया है। इस्लामी विश्वास के अनुसार अरब की धरती, भाषा और अरबी मुसलमान महान हैं। अन्य स्थानों के मुसलमान ऐसे धर्मांतरित लोग हैं, जिन्हें इस्लाम में धर्मांतरित होने के बाद अपना इतिहास, संस्कृति, परंपरा, रीति-रिवाज सब कुछ छोड़ना पड़ता है। ऐसे मुसलमानों में एक ग्रंथि होती है कि वे अरब के नहीं हैं, अतः प्रथम श्रेणी के मुसलमान नहीं हैं। गैर-अरबी मुसलमान अपनी इस भावनात्मक कमी को दूर करने की चाह में मजहबी मामलों में दुगना जोश दिखाता है; जब कि अरबी मुसलमान ऐसी ग्रंथि से मुक्त होने के कारण यूरोपीय परंपराओं को तनिक सहजता से देखता है।

मुस्लिम समाज को समझना चाहिए कि आज निरंतर छोटी होती दुनिया में मान-सम्मान के मानदंड किसी एक समुदाय की जिद से नहीं तय हो सकते। दो ही विकल्प हैं। प्रथम, अपने-अपने समाज में अपने-अपने मानदंड। तब किसी समुदाय को अपने और अपने आदरणीय विश्वासों, प्रतीकों आदि के बारे में दूसरे समाज में क्या कहा जा रहा है, इस से नितांत निरपेक्ष रहना चाहिए। बुरा नहीं मानना चाहिए। ताकि अपनी बारी में वह भी दूसरे समाज के विश्वास-प्रतीकों के प्रति मनचाहा रवैया रख सके। अर्थात्, आलोचनाओं के प्रति परस्पर सहिष्णुता। दूसरा विकल्प यह है कि सभी समुदाय कुछ ऐसे मान्य नियम स्वीकार करें जो सभी मजहबों-मतों से ऊपर माने जाएं। तब किसी मजहब को स्वयं को ‘एक-मात्र सच्चा’ और दूसरे को ‘अंधकार-ग्रस्त’ या झूठा’ बताने, दूसरों का मतांतरण कराने, तथा दुनिया के हर कोने में, हर विषय में अपने मजहब, विचार के अनुसार सब कुछ तय करवाने का अधिकार छोड़ना होगा; अर्थात्, सभी मजहबों को ऐसी बातों को त्यागना, जो दूसरों के विश्वासों से टकराते हैं। इस के लिए एकांतिक मजहबों को अपनी यह मानसिकता छोड़नी पड़ेगी कि दूसरे मजहब ‘शैतानी’ हैं। उन्हें दूसरे मजहबों की वैधता सिद्धांततः स्वीकार करनी पड़ेगी। महज परिस्थितिवश ‘बर्दाश्त’ करने की भांगिमा छोड़ कर अन्य धर्म-विश्वासों को सचमुच आदर देना होगा। तब विभिन्न समुदायों के बीच व्यवहार में नितांत सेक्यूलर नियमों को स्वीकार किया जा सकेगा जो मजहबी परंपराओं से ऊपर हों। इस के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं। यह नहीं हो सकता कि चित भी मेरी और पट भी। हम



तो दूसरों को काफिर कहें, जिहाद छेड़ें, हिंसा करें, जिस किसी को मिटाने का आह्वान करते फिरें और दूसरा हमें हिंसक भी न कहें!

यह अंदाज राजनीतिक पैतरा है कि इस्लामी परंपराओं में कभी, कोई सुधार या संशोधन नहीं किया जा सकता। इस्लामी भावनाओं के नाम पर प्रायः विश्व-राजनीति, देसी राजनीति या उलेमा के हित साधे जाते रहे हैं। कार्टून-प्रसंग में भड़काई गई हिंसा में भी कुछ मुस्लिम टिप्पणीकारों ने विभिन्न इस्लामी ईमामों, तानाशाह के राजनीतिक स्वार्थ देखे हैं। किंतु इन बातों पर हमारे मीडिया में चर्चा न के बराबर हुई। लेकिन सच का सामना करना और मुस्लिम जनता को भी कराना ही श्रेयस्कर होगा। मान-सम्मान का प्रश्न परस्परता के आधार पर ही हल हो सकता है, इस्लाम के विशेषाधिकार की जिद पर नहीं। आवश्यकता है, सारे मसले पर एक सहिष्णुता एवं उदारवादी मनोवृत्ति की - विशेषकर इस्लामी उलेमाओं में। भारत के संदर्भ में केवल यही कहा जा सकता है। जहां मुस्लिम बुद्धिजीवी तथा उदार लोग इस्लामियों के भय के मारे चुप रहते हैं वहीं राजनीतिज्ञ, मीडियो तथा अन्य बुद्धिजीवी अवसरवादिता से ग्रसित होकर स्पष्टवादिता से परहेज करते हैं। यह असहिष्णु इस्लामियों को तथा अन्य धर्मानुयायियों को प्रोत्साहित करता है।

### प्राप्ति-स्वीकार पुस्तकें

**समय संवादी, रमेशचन्द्र शाह, प्रथम संस्करण: 2005; प्रकाशक: सूर्य प्रकाशन मन्दिर, नेहरू मार्ग (दाऊजी रोड) बीकानेर; मूल्य: 250/- रुपए, पृष्ठ: 208.**

**देह बन गई चंदन, राजेन्द्र खेर, प्रथम संस्करण 2005; प्रकाशक: विहंग प्रकाशन, आनंदनगर, सिंहगड मार्ग, पुणे, मूल्य: 200/- रुपए, पृष्ठ: 612.**

**शब्दों से प्रेम समझाने की जिद छोड़ती हूँ, लीला रानी शबनम, कविता संग्रहमीनाक्षी प्रकाशन, दिल्ली; प्रथम संस्करण 2004; 111 पृष्ठ; 120 रुपये**

**श्री अरविंद दर्शन के प्ररिप्रेक्ष्य में कवि पंत और सुन्दरम्, कुमन लाल व्यास; प्रथम संस्करण सन् 2005, प्रकाशक: कलासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, कर्मपुरा, नई दिल्ली. मूल्य: 400/- रुपए, पृष्ठ: 160.**

### हमारे आदिवासी संग्राम का एक रोमांचक अध्याय

## गोंड जनजाति के वीर योद्धा कोमुरम भीम

डॉ. विजयराघव रेड्डी\*

अंग्रेजों के शासन से मुक्ति पाने के लिए देश में जो स्वतन्त्रता संग्राम हुए हैं, वे अनेक हैं, अनेक प्रकार से हुए हैं और अनेक जगहों पर भी हुए हैं। सार्वदेशिक स्तर पर ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन के खिलाफ 1857 में जो संग्राम हुआ था, उसे आधुनिक भारत के इतिहास में प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम कहा गया है। यह संग्राम सफल नहीं हुआ। लेकिन इसके बाद के शासन की बागडोर ब्रिटिश सरकार ने कम्पनी से अपने हाथ में ले ली थी। 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना, गांधी जी के दक्षिण अफ्रिका से भारत आगमन और कांग्रेस पार्टी का गांधी जी के नेतृत्व में आजादी के लिए राष्ट्रीय-आन्दोलन, ये सब हमारे इतिहास के गौरवमय पन्नों में अंकित हैं। लेकिन वे आन्दोलन, वे संघर्ष और वे लड़ाइयाँ जो 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम से पहले से हमारे आदिवासी जन समुदायों के द्वारा 19वीं सदी के प्रथम चरण से ही ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी को अपने यहाँ जड़ न जमाने देने के लिए लड़ी गई थी, वे अभी इतिहास के पन्नों में अंकित नहीं हो पाई हैं। आदिवासी जनजाति लोगों के बहुल हमारे उत्तर पूर्वांचल के इलाके में तो ईस्ट इंडिया कम्पनी को 19वीं सदी के शुरू से लेकर 1857 तक अर्थात् प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम तक पूरी अर्ध शताब्दी की अवधि में इस इलाके के मणिराम बरुआ, वीर तिरुहुत सिंह, वीर टीकेंद्रजीत सिंह तथा अन्य राष्ट्रीय नेताओं के द्वारा छेड़े गए स्वतन्त्रता संग्राम तथा लुशाई, खामती, सिंगफो, जयंतिया, कछारी आदि आदिवासी लोगों के विद्रोह का कड़ा मुकाबला करना पड़ा था। कम्पनी राज के बाद भी, 1858 से 1898 तक अर्थात् ब्रिटिश शासन को इस पूरे अंचल पर अपने पैर जमाने तक के इन 40 वर्षों में, इस अंचल के लोगों, विशेषकर मिजो और नागा लोगों ने चैन से रहने नहीं दिया था। कब और किस दिशा से ये लोग गोरे अंग्रेज अफसरों पर, उनकी सेना

\* डॉ. विजयराघव रेड्डी, पूर्व अध्यक्ष, आंध्र प्रदेश हिन्दी अकादमी, पता : विजय विलासम्, 3/3-1/10 श्रीनिवासपुरम, रामंतपूर, हैदराबाद-500013

के ठिकानों पर, और चाय बागानों पर धावा बोलकर मार-काट का आलम पैदा करेंगे, इस बात को लेकर सरकार सदा भयभीत होकर संशय की स्थिति में रहती थी। ऐसे हमारे इन वीर बाँकुरों की गाथाएँ इस अंचल के लोगों में प्रचलित हैं। इनके वीरोचित संघर्ष को भी हमारे स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में शामिल किया जाना चाहिए।

उत्तर पूर्वांचल की आबादी में आदिवासियों की आबादी 30 प्रतिशत है तो राष्ट्रीय स्तर पर इनकी आबादी का प्रतिश 8 माना जाता है। शेष आदिवासियों, जैसे मुंडा आदिवासी, कोय आदिवासी और गोंड आदिवासी, में भी आजादी के लिए वीरोचित लड़ाइयाँ हुई हैं। बिरसा मुंडा के नेतृत्व में मुंडा आदिवासियों के संघर्ष का इतिहास अब राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में जुड़ गया है। लेकिन क्रान्तिकारी नेता अल्लूर सीताराम राजु के नेतृत्व में कोय लोगों के द्वारा जो संघर्ष चला उसको भी हमारे स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास एक रोमांचक अध्याय के रूप में जोड़ा जाना चाहिए।

इसी प्रकार गोंड आदिवासियों के एक वीर योद्धा ने निजाम के निरंकुश शासन के खिलाफ जो संघर्ष किया था, उसका अपना इतिहास है जिसे आंध्र प्रदेश में भी कम ही लोग जानते हैं। ऐसे कई आदिवासी जन समुदायों के द्वारा जो संग्राम विदेशी शासन के खिलाफ हुए थे, उन सबके समावेश से ही भारत के स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास परिपूर्ण माना जा सकेगा।

जहाँ तक गोंड आदिवासी के वीरोचित संग्राम का सम्बन्ध है, वह विदेशी शासकों के खिलाफ न होकर स्वदेशी शासक अर्थात् निजाम शासन की दमनकारी नीतियों के विरुद्ध लड़ा गया एक रोमांचकारी संग्राम है। इसका नेतृत्व किया था गोंड आदिवासी वी योद्धा कोमुरम भीम ने।

गोंड आदिवासी आंध्र प्रदेश के आदिलाबाद जिले, उससे लगे हुए महाराष्ट्र के जिलों के पहाड़ों में एवं मध्य प्रदेश के कुछ जिलों में रहते हैं। ये सारा इलाका मध्य प्रदेश के उस इलाके को छोड़कर उस समय हैदराबाद निजाम के अधीनता में आता था। कोलामी आदिवासी भी इनके साथ रहते हुए सहजीवन बिताते हैं। दोनों की भाषाएँ अलग-अलग हैंगोंडी और कोलामी। गोंडी एवं कोलामी भाषाएँ द्रविड परिवार की मानी जाती हैं। आंध्र प्रदेश एवं महाराष्ट्र के गोंडी भाषी छात्रों की प्राथमिक शिक्षा गोंडी भाषा में दी जाती है। लेकिन आंध्र प्रदेश में गोंडी भाषा तेलुगु लिपि में और महाराष्ट्र एवं मध्य प्रदेश में देवनागरी लिपि में पढ़ाई जाती है। एक जमाने में गोंडों का अपना अलग राज्य था। प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में गोंड आदिवासी जनता ने अपने नेता कोमुरम रामजी के नेतृत्व में अंग्रेजों के खिलाफ तीन रात और

\* तेलुगु में पेड़ चेट्टु कहलाता है।

\*\* तेलुगु में कृषि को व्यवसायम् कहते हैं।

तीन दिन घोर लड़ाई की थी। अंग्रेजों की बन्दूकों के सामने गोंडों के देशी अस्त्र टिक न सके। राम जी गोंड को बंदी बनाकर अंग्रेजों ने 'निर्मल' के पास एक पेड़ में लटकाकर फाँसी देकर मार डाला था। जिस पेड़ से लटकाकर उसे फाँसी दी गई थी, वह पेड़ आज भी 'रामजी चेट्टु\*' के नाम से जाना जाता है।

कोमुरम भीम का जन्म इसी रामजी के वंश में हुआ था। भीम का बचपन संकेनपल्ली में बीता था। भीम के पिता कोमुरम चिन्नु की मृत्यु के बाद सारा परिवार संकेनपल्ली से असीफाबाद के सुर्दापूर में आकर बस गया। अपने दोनों चाचा, कोमुरम कुर्दु और कोमुरम एसु, और अपने खुद के भाइयों एवं चचेरे भाइयों के साथ मिलकर जंगल काटकर उसने खेती की जमीन तैयार की। उसमें उन्होंने बीज बोये। आदिवासियों में पहाड़ों में जंगल काटकर खेती करने का रिवाज होता है। ऐसी खेती उत्तर पूर्वांचल के राज्यों में 'झुम खेती' कहलाती है। इसे गोंडु इलाके में 'पोडु व्यवसायम्\*\*' कहते हैं। जब फसल काटने का समय आ गया तो 'सिद्दिकी' नाम का एक मुसलमान पट्टेदार आया। उसने कहा कि वह सारा जंगल अपने पट्टे का है। फसल काटने का अधिकार उसका है और अन्य कोई फसल पर हाथ लगाएगा तो उसकी खैर नहीं होगी। खूब वाद-विवाद हुआ, झगड़ा-फसाद शुरू हुआ। गुस्से में आकर कोमुरम भीम ने सिद्दिकी के सिर पर डण्डे से मारा तो मर गया। 'सिद्दिकी' के मरने की खबर निजाम राज्य में आग की तरह फैल गई। इस बीच कोमुरम भीम अपनी भाभी की सलाह पर गाँव से भाग निकला। निजाम पुलिस ने आकर सारे गाँव वालों को मार-पीटकर सारी फसल को तहस-नहस कर डाला। पुलिस की आँखों से बचते हुए वह अपने पुस्तैनी गाँव संकेनपल्ली गया। वहाँ अपने बचपन के जिगरी दोस्त 'कोंडगल' और अन्य दोस्तों से मिलकर निजाम राज के जुल्म से निजात पाने की योजना बनाई। तय हुआ कि गोंडों का सरदार 'मुखासी' से मिलने उनके गाँव भारीलोही जाकर उनकी मदद माँगी जाए, सौ गूडेमों (गोंड तथा अन्य आदिवासी समुदाय पहाड़ों में खेती करते एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर अपने घर बनाते हैं, ऐसे स्थानों को गूडेम कहते हैं।) का सरदार मुखासी कहलाता है। सभी गूडेमों के लोगों को एकत्रिक कर एक सेना तैयार कर निजाम सरकार के जुल्मों का मुकाबला करने की अपनी योजना मुखासी को सुनाई तो उसने इसके लिए अपनी सहमति नहीं दी। भीम एवं उसका दोस्त कोंडगल निराश होकर 'बलारशाह' की ओर चले गए।

बलारशाह रेलवे स्टेशन पर पहुँचकर वहाँ वे दोनों शाम तक भूखे पड़े रहे। इतने में एक रेल गाड़ी आकर रुकी तो वे उस पर चढ़कर चाँदा (अब का चन्द्रपुर) पहुँच गए। वहाँ विटोबा नामक एक व्यक्ति ने इन दोनों को आश्रय दिया। विटोबा एक प्रिंटिंग प्रेस चलाता था। उन दिनों अंग्रेज सरकार एवं निजाम सरकार के खिलाफ एक क्रान्तिकारी संगठन काम करता था। उस संगठन का उपयोगी साहित्य एवं उसका एक समाचार पत्र का मुद्रण उस प्रेस में होता था। समाचार पत्र को रहस्यमय तरीके

से सदस्यों तक पहुँचाने का काम विटोबा कोमुरम भीम से करवाता था। कोंडगल तो चाँदा से कुछ दिनों के बाद लौट गया। लेकिन भीम विटोबा की सेवा करते हुए वहीं कुछ वर्ष रहा था। विटोबा के यहाँ रहते हुए उसने तेलुगु अंग्रेजी और हिन्दी लिखना पढ़ना सीखा। राजनीति के मूल सूत्र, क्रान्ति एवं क्रान्तिकारियों के कार्यकलाप आदि से सम्बन्धित शिक्षा उसने विटोबा से प्राप्त की। वहीं रहते हुए उसने यह संकल्प कर लिया था कि निजाम सरकार के जुल्म से अपनी जाति के लोगों की रक्षा करनी है और गोंड राज्य की स्थापना कर गोंड जाति की पूर्व प्रतिष्ठा को पुनः कायम करना है। इसी बीच पुलिस को विटोबा के मुद्रणालय का पता लग गया और वह एक दिन विटोबा को बंदी बनाकर ले गई। निराश्रित भीम वहाँ से भागा। चाँदा से चलकर वह 'मंचिर्याल' पहुँचा, जहाँ उससे एक व्यक्ति की भेंट हुई, जो अपनी रोजी की तलाश में असम के चायबागानों की तरफ जा रहा था। भीम भी उसके साथ हो लिया। एक चाय बागान में दोनों को काम मिल गया।

असम चाय बागानों में मजदूरों का, मालिक लोग खूब शोषण करते थे। साथ ही वे उन्हें हर तरह से सताते भी थे। एक दिन भीम ने देखा कि मैनेजर दो मजदूरों को कोड़े से मार रहा था। मजदूर चीख रहे थे। भीम से नहीं रहा गया। उसने मैनेजर के हाथ से कोड़ा छीनकर उसकी पिटाई की। मैनेजर ने मालिक से शिकायत की। मालिक ने तुरत पुलिस को बुलवाया। पुलिस ने भीम सहित 25 मजदूरों को पकड़कर जेल में डाल दिया।

असम के चाय बागानों में उन दिनों आंध्र इलाके के भी कई आदिवासी मजदूरी करते थे। उनसे भीम ने अल्लूरि सीताराम राजु (1897-1924) की वीरोचित गाथाएँ सुन रखी थीं। सीताराम राजु आंध्र इलाके के एक ऐसे क्रान्तिकारी योद्धा थे जिन्होंने कोय आदिवासियों का नेतृत्व कर अंग्रेजों की नाक में दमकर रखा था। अल्लूरि सीताराम राजु के वीरोचित कार्यों से भीम ने स्फूर्ति प्राप्त कर रखी थी। जेल में से चौथे दिन ही पुलिस की आँखों में धूल झोंककर लोहे के सीखों को तोड़कर भीम भाग निकला। असम से वह फिर बलारशाह होते हुए काकनघाट में रह रहे अपने परिवार के साथ जा मिला। परिवार में तथा पूरे गूडेम में खुशियों का कोई ठिकाना नहीं रहा। उसके स्वागत में दिन भर धिंसा, गुस्ताडि और दंडारि आदि नृत्य हुए।

देवडम के लच्चु पटेल को जब यह खबर लगी कि भीम काकनघाट लौट आया है तो उसने उसे अपने यहाँ बुलाकर अपनी जमीन जायदाद की रख रखाव में अपनी सहायता करने के लिए भीम को नियुक्त कर लिया। लच्चु पटेल के यहाँ रहते हुए उसने निजाम सरकार और लच्चुपटेल के बीच जमीन के सम्बन्ध में कोर्ट-कचहरियों में जो तगाजा चल रहा था उसका वकीलों की सहायता से निपटारा कराया। इससे भीम की प्रसिद्धि फैल गई। भीम से पहले लच्चु पटेल के यहाँ अंबतिराव नाम का एक गोंड काम करता था। अंबतिराव की लड़की सोमबाई से भीम की शादी लच्चु पटेल ने कराई। भीम शादीशुदा होकर काकनघाट में अपना गृहस्थ जीवन बिताने लगा।

भीम के चाचा कोमुरम कुर्दु ने अपने भाई एसु के साथ मिलकर आसपास के गोंड गूडेमों के निवासियों को एकत्रित कर समझाया कि अब जिस जगह पर हम खेती कर रहे हैं वह जमीन ऊसर हो गई है। यहाँ से कुछ दूर पर बावेझरी लोहि के किनारे अच्छी उर्वर जमीन है। वहाँ के जंगल को साफ कर वहाँ हम खेती करेंगे तो अच्छी फसल पैदा होगी। हमारे बाल-बच्चों को भूख से मरने की नौबत नहीं आएगी। हम यहाँ से हटकर बावेझरी लोहि के पास अपने गूडेमों को बनाएँगे तो ठीक रहेगा। सबने हामी भर दी। बस कुछ ही दिनों के बाद देखते-देखते नई जगह पर 12 गूडेम-बावेझरी, चलबंडी, टोयिकनमेवाडम, भीमनगोंदि, कल्लेगाम मुरिकिलांक, अंकुसापूर, नरसापूर, देकिडगूड, जोडेनघाट, पटनापूर और गोगिनमेवाडम नाम से तैयार हो गए। सभी गूडेमों के लोगों ने जंगल साफ कर खेती की जमीन तैयार की और खेती की। खेतों में फसल लहलहा रही थी। इतने में जंगल विभाग के अधिकारी आए। उन्होंने गोंडों पर डंडे बरसाते हुए ऐलान किया कि यह सारा जंगल सरकार का है। इसमें गूडेम बनाने एवं खेती करने का अधिकार तुम्हें किसने दिया? तुम लोग इस इलाके को खाली करके चले जाओ। सारे गूडेमों में जंगल विभाग के जवानों ने आतंक मचाया।

गूडेमों के कुछ बुजुर्ग लोगों ने काकनघाट जाकर भीम को सारी बातें बताईं और आई हुई आफत से उबारने के लिए उससे अनुरोध किया। गोंड लोगों को भीम पर विश्वास था कि वह गोंड आदिवासियों में अधिक समझदार, कानून का जानकार और समस्या को सुलझाने में सक्षम व्यक्ति है। लच्चु पटेल से इजाजत लेकर उससे सलाह मशविरा कर भीम पहले पटनापूर के बावुदम गाँव गया। वहाँ 'महदु' नाम के व्यक्ति से मिला जो पढ़ा लिखा एवं कानून कायदों का जानकार था। उसे साथ लेकर जनगाम में (सैफाबाद) रहनेवाले पैकाजी रामचन्द्र राव वकील से मिलकर उसने जंगलात लोगों के जुल्मों का बखान कर उनसे निजात पाने के लिए उनकी मदद माँगी।

भीम ने वकील से कहा कि अपने पुरखों के जमाने से हम जंगलों में खेती-बाड़ी करते आ रहे हैं। इस पर हमारा ही अधिकार रहा था। अब एकाएक यह सरकारी जमीन कैसे हो गई? यह जंगल विभाग की जमीन कैसे हुई?

वकील रामचन्द्र राव भीम को समझाने लगे कि तुम्हारी बात ठीक है। 1918 के पहले तक पूरे जंगल पर तुम लोगों का अधिकार था। तब तक सरकार ने यह नहीं कहा था कि यह सरकारी जमीन है। लेकिन सरकार ने 1918 में एक कानून पास कराकर इसे आरक्षित जंगल (रिजर्वड फारेस्ट) घोषित कर दिया है।

भीम आवेश में आकर बोला, "किस से पूछकर हमारी जमीन पर सरकार ने यह कानून पास किया। हमारी जमीन सरकार के कब्जे में कैसे चली गई है?"

वकील ने कहा कि इतने वर्षों से आप लोगों में से ऐसा प्रश्न करनेवाला कोई नहीं था। आप लोगों के अज्ञान के कारण यह सब होता रहा था। बस एक ही उपाय है कि

तुम लोग निजाम के पास जाकर उनसे प्रार्थना करो कि वह तुम्हारे साथ न्याय करें। जो सरकार हम पर अत्याचार कर रही है, उसके पास हम प्रार्थना करें? उससे न्याय करने की उम्मीद रखें। यह होगा नहीं। हम अपनी ताकत दिखाएँगे। देखेंगे आखिर सरकार कैसे हमसे जमीन छीन लगी, यह कहते हुए भीम लौट पड़ा अपने लोगों के पास।

भीम ने 12 गूडेमों के सारे लोगों को एक जगह एकत्रित किया। सभी के सामने खड़े होकर भीम ने यों सम्बोधित किया :

“भाइयों! सारे गोंड जाति की भलाई की ख्वाहिश लेकर मैं यहाँ आपके बीच आया हूँ। एक गोंड आदिवासी होने के नाते मैं आपकी मुसीबतों से बखूब वाकिफ हूँ। खेती की जमीन के वास्ते हम जंगल को काटते हैं तो सरकार और पट्टेदार इसे कानूनन जुर्म कह रहे हैं। हमारे लिए जंगल में खेती करने के सिवा और कोई रास्ता नहीं है। इसलिए हमारे ऊपर कई मुकद्दमें दायर करने पर भी हम कुछ नहीं कर पा रहे हैं। वे हमें पीट रहे हैं, मार रहे हैं, हमारे गूडेमों में आकर हमारी झोंपड़ियाँ जला रहे हैं, हमारे हाथ काट रहे हैं, कई जुल्म हमारे ऊपर ढा रहे हैं, फिर भी हम सब कुछ सहते हुए भी अपनी जमीन पर खेती-बाड़ी कर रहे हैं। हम सब एक ही मूल पुरुष की संतानें हैं। मेरे दोनों चाचाओं ने यहाँ इन 12 गूडेमों के निर्माण का बंदोबस्त किया था। हम सब एका में काम करेंगे तो हमें कोई डिगा नहीं सकेगा। लेकिन सरकार खामखाह हमारे ऊपर जबदस्ती मुकद्दमें बना रही है। वकील लोग हमें कोर्टों में तलब कर रहे हैं। हम तो इन कोर्टों के मुकद्दमों के मारे मर रहे हैं। कोर्टों के जरिए हमारी समस्याओं का समाधान न मिलने का। अब तो बारिश का मौसम आनेवाला है। हम सभी गूडेमों की जमीन जोतकर खेती करना शुरू करेंगे। वे खुद ब खुद हमारे साथ युद्ध करने के लिए उत्तर आएँगे। आखिरकार एक दिन इनके जुर्मों से हमें निजात पाना ही है। जैसा कि अपने फसलों को हम जंगली जानवरों से बचा लेते हैं, वैसा ही सरकारी मुलाजिमों से लड़-भिड़कर अपनी जमीन के हक को भी हासिल कर लेंगे। क्या आप सब मेरे साथ हैं?” सभी लोगों ने एक स्वर में कहा कि हम सब आपके साथ हैं। युद्ध जरूर करना है। भूखे मरने के बजाय इनसे लड़कर मरेंगे। सबने जोर से कहा ‘कोमुरम भीम हमारे नेता हैं। कोमुरम भीम जिन्दाबाद।’

उस वर्ष जब फसल काटने का समय आया, जंगल विभाग के लोग आए। उनमें अमीन, चौकीदार, सारेदारी, गिर्दावर, पटवारी आदि कई लोग थे। कुछ लोग घोड़ों पर सवार होकर आए थे। अमीन ने आगे बढ़कर गुस्से में गालियाँ देते हुए कहा : फिर तुम लोगों ने कानून को तोड़ा, सरकारी जंगल को काटा और जमीन पर

\* तेलुगु में लाठी को बड़िते।

खेती की। भीम ने भी तैश में आकर कहा यह जंगल हमारा है। हम इसमें कुछ भी करेंगे। तुम लोग हमें लूट रहे हो। तुम घूसखोरी में हमारी बकरियाँ, भेड़ और मुर्गे सब ले जाते हो। तुम लोग चोर मत बनो और हमें चोर मत बनाओ।

अमीन ने गुस्से के मारे ‘गोंड बदमाश, हमें चोर कहते हो, तुम्हारी इतनी हिम्मत’ कहते हुए भीम को जोर से थप्पड़ मारा। यह देखकर अमीन के साथ आए अन्य लोगों ने भी वहाँ के गोंड लोगों के साथ हाथापाई की। गोंड लोगों का पलड़ा भारी होते देख जागीदार ने बंदूक से गोली दागी। वह भीम के कंधे को घायल करते हुए निकल गई। अब क्या था सारे गूडेमों के लोग भागकर आए और सरकारी मुलाजिमों पर टूट पड़े। सरकारी मुलाजिम मार खाकर वहाँ से दुम दबाकर लौटे।

जंगलात के अमीन, गिर्दावर और अन्य सरकारी मुलाजिमों ने तहसीलदार अब्दुल सत्तार से मिलकर उसे सारा वाकया सुनाया। तहसीलदार ने डी. एस. पी. से चर्चा कर भीम तथा चार और लोगों को गिरफ्तार करने का वारंट जारी कराया। उन लोगों की गिरफ्तारी के लिए भारी बन्दोबस्त के साथ जाने को डी. एस. पी. सोच रहे थे। इसी बीच भीम के चाचा कोमुरम खुर्द के मन में यह विचार आया कि सरकारी मुलाजिमों की शिकायत निजाम नवाब से की जाए तो नवाब उनके साथ शायद न्याय करे। नवाब न्याय प्रिय होंगे, उन्हें हमारे साथ जो अत्याचार हो रहा है, उसका पता नहीं होगा। अतः एक बार हैदराबाद जाकर नवाब से सारी बातों का खुलासा करने से समस्या का समाधान मिल सकेगा। यह विचार जनकपुरम के ‘साते पंतुलु’ ने भी व्यक्त किया। भीम दो तीन जानकार लोगों को साथ लेकर नवाब से मिलने हैदराबाद गया। तीन दिन तक हैदराबाद में रहने पर भी किसी ने उसकी कोई बात नहीं सुनी। आखिर उन लोगों को नवाब के नौकरों ने आदमियों की तरह भी नहीं देखा। नवाब के दर्शन के बिना वे निराशा होकर गूडेम लौट आए।

इस बीच पुलिस के एक दस्ते को लेकर डी. एस. पी. ने गूडेमों की तलाशी ली। भीम और अन्य मुद्दियियों को न पाकर जो भी वहाँ मिले, उन्हें मारा पीटा और लूटपाट मचाई। फिर कुछ दिन के बाद अमीन पुलिस जवानों के साथ जोड़नघाट गूडेम आया। वहाँ भीम को देखकर उसने कहा कि तुम पर कोर्ट में मुकद्दमा दायर हुआ है। मैं तुम्हें कोर्ट ले जाने का यह समन लाया हूँ, चलो हमारे साथ कोर्ट। भीम ने जवाब दिया, “अब कैसे व मुकद्दमों से क्या मतलब? यहाँ के बारहों गाँव हमारे अपने हैं। क्या तुम्हारी सरकार को यह मालूम नहीं कि यह गोंड राज्य का इलाका है। आगे फिर कभी जंगलात के अधिकारी आएँगे, तो वे जान के साथ लौटेंगे नहीं। हम किसी का खा नहीं रहे हैं। किसी के साथ अन्याय नहीं कर रहे हैं। यह राज्य हमारा है। जाओ जाकर यह समाचार अपनी सरकार को दो।”

भीम के नेतृत्व में गोंड सेना तैयार कराई गई। बारह गूडेमों के सारे युवक सेना में भर्ती कराए गए। अस्त्र-शस्त्र के संचालन का प्रशिक्षण रोज दिया जाता रहा। हर

दिन 'बड़िते\* पूजा' की जाती रही। बड़िते पूजा का यह नियम था कि हर जवान को अपने लाठी की पूजा कर उसे हमेशा अपने साथ रखना चाहिए। सारे गूडेमों में युद्ध का माहौल तैयार हो गया। उधर निजाम सरकार के कैप्टन भी फौज को लेकर आए। जोडनघाट के गूडेम को जो कि सभी गूडेमों के ऊपर एक ऊँचे पहाड़ पर बसा है, केन्द्र बनाकर गोंड सेना युद्ध में उतर गई। सरकार की सेना पर ऊपर से गोंड सेना गोलियाँ बरसाती रही। जोडनघाट पर चढ़ने का विफल प्रयास सरकारी सेना लगातार करती रही। गोंड सेना अधिक उत्साह से शत्रु सेना को परास्त करने में तुली रही। चार महीनों तक इस तरह लड़ाई चलती रही। नीचे के गूडेमों पर सरकारी सेना तबाही मचाती रही, लेकिन वह ऊपर चढ़ नहीं सकी। ऊपर चढ़ने के रास्ते पर ही गोंड की सारी फौज इकट्ठी होकर सरकारी सेना की दाल गलने नहीं दी। चार महीने लड़कर सरकारी सेना लौट तो गई, लेकिन सरकार अन्दर-ही-अन्दर भारी भरकम सेना को लेकर फिर लड़ाई में कूदने युद्ध के नए तरीके की योजना बनाने में जुट गई। सरकारी सैनिकों से टक्कर लेकर भीम ने सेना को युद्ध क्षेत्र से भगा दिया। यह समाचार पूरे राज्य में फैल गया। होम सेक्रेटरी ने निजाम की अध्यक्षता में नई युद्ध नीति तय करने एवं गोंड समस्या के समाधान करने के लिए एक बैठकर बुलाई। उसमें एक अंग्रेज अफसर भी सम्मिलित था। उसने बताया कि निजाम सरकार को पहले से ही हिन्दुओं से एक ओर खतरा पैदा हुआ है तो दूसरी ओर कम्युनिस्टों का जोर बरकरार है, अब आदिवासी भी सरकार के खिलाफ हथियार उठा रहे हैं। तीनों तरफ से आफत सरकार पर आई हुई है। आदिवासियों से संघर्ष करने का पूर्व अनुभव हम अंग्रेजों को है। अब से 15-20 वर्ष पहले ही आंध्र के तटीय पर्वतीय इलाके में रहनेवाले कोय आदिवासियों ने क्रान्तिकारी योद्धा अल्लूरि सीताराम राजु के नेतृत्व में लड़कर लम्बे समय (1922-1924) तक हमारी नींद उड़ाई थी। इसलिए मेरी राय में पहले उनसे समझौता करने का रास्ता निकाला जाए। यदि यह रास्ता सफल नहीं होता तो धोखे से उन पर हमला कर उन सबको खत्म कर दिया जाए।

अंग्रेज अफसर की राय पर निजाम सरकार ने भीम से बातचीत के लिए अपने एक सब-कलक्टर को भेजा। सब-कलक्टर ने भीम से कहा कि तुम्हें तथा तुम्हारे खानदान के लोगों को जितनी जंगल की जमीन चाहिए उतनी हम उनके नाम पर पट्टे करके दे देंगे। तुम यह लड़ाई बंदकर दो। सारी बात सुनने के बाद भीम ने कहाहमारी यह लड़ाई जमीन के पट्टे के लिए नहीं है। तुम हमें सारे 12 गूडेमों के जंगल की जमीन को गोंड लोगों को पट्टे में लिखकर दोगे तो भी यह स्वीकार्य नहीं है। हमें अपना गोंड राज्य चाहिए। यदि सरकार इस पूरे इलाके को गोंड राज्य का दर्जा देती है और अपने राज्य में अपने हिसाब से राज्य करने देती है तब हम निजाम के साथ रहेंगे। नहीं तो हम अपने राज्य को हासिल करने के लिए जिंदगी भर लड़ते रहेंगे।

भीम समझ गया कि सरकार ने चाल चलाने अपने अधिकारी को उनके पास

भेज दिया था। अब चूँकि उस की चाल नहीं चली, सरकार जरूर फिर हमला बोल देगी। अतः उसने संकल्प कर लिया कि गोंड सेना को पूरी मुस्तैदी से तैयार करना है। आनेवाली भयंकर लड़ाई में शत्रु सेना को परास्त करना है। फिर उसने सारे गूडेमों के नौजवानों को इकट्ठा किया। सरकार की चाल का विवरण देते हुए अपने संकल्प को दुहराया। आदिवासी समाज में हर व्यक्ति गायन, नृत्य आदि कलाओं में निपुण होता है। उत्सव व त्योहारों व अन्य सामाजिक अवसरों पर अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं। भीम के प्रेरणाप्रद बातें सुनते ही सारे नौजवानों में उत्साह की लहर दौड़ पड़ी। उनमें से तीन नौजवान कूदकर सामने आए और जोश में अपनी भाषा में निम्नलिखित गीत गाने लगे। वे एक-एक चरण गाते रहे तो बाद में लोग कोरस में चरणों को दुहराते रहे

कोमुरम भीमकु जय बोलो दादा  
कोमुरम भीम कु जय बोलो दादा  
भूमि घाटो कटिड साटि  
मरट नंडिंग दोहम डोपि  
बडग पीसा लडय तुंगना  
रूसी सट्टेट डेयिसाना  
मरट नंडिंग तुंगना  
मरट बांडे शियाना  
मरट सामू कर्याना  
मरट भूमि गेल्वाना  
गोंड राज्य तराना  
गदित पोरो उद्वाना  
कोमुरम भीम...

जंगलातनकु मामूल सिमिल सिल्ले  
नायिंगल पट्टि सिथिले सिल्ले  
जाडि मामूल सिमिल सिल्ले  
हर्रे-कोरु सिमिल सिल्ले  
मरट रगल झंडा तहाना  
संदीर मरट उंदि आयना  
नोरुकु अपाति वाते गिरि  
मरट उंदि आपाना

\* रिवाजा-रिश्वत (Cnstomary bribe) तेलुगु में 'मामूल' कहलाता है।

कोमुरम भीम...

मावागोष्ठी उँदि आयाना  
भूमिसाटि लडम तुंगसि  
मरट पिसानारे पोकुने  
कोमुरम भीम...

मरट हुळ्ळार मंदाना  
पिसिसि बच्चे मरट अयिवट  
मकुन इगटल वावायाना  
कोमुरम भीम साटि  
लड़ायि तुंगाम तोरे  
और मसाटि  
परण सियवल सटि मंतोरे  
कोमुरम भीम...

अर्थात्

कोमुरम भीम को जय बोलो भाई  
कोमुरम भीम को जय बोलो भाई  
जमीन व रोटी के लिए  
हम हीं को कसना है कसर  
लाठी पकड़े करो युद्ध  
कटार व हँसया हाथ में लो  
हम हीं को करना है युद्ध  
हम हीं को बंदूक पकड़ना है  
हम हीं को कसरत करना है  
हम हीं को जमीन जीतना है  
गोंड राज्य लाना है  
गद्दी पर बैठना है।

कोमुरम भीम...

जंगलात वालों को मामूल\* नहीं देना  
हल का मामूल नहीं देना  
घास का मामूल नहीं देना  
बकरी व मुर्गी नहीं देना  
हम हीं को लाल झंडा ऊँचा रखना है

हम सब को एकजुट होना है  
गर किसी को कोष्ट हो  
हम सबको एक जुट होना है  
कोमुरम भीम...

हम सबको एक जुट होना है  
जमीन के वास्ते युद्ध कर  
हमें शान से जीना है।  
कोमुरम भीम...

हमें होशियार रहना है  
जीकर हमने पाया क्या है?  
हमें अब अक्ल आनी है  
कोमुरम भीम हमारे वास्ते  
लड़ाई लड़ रहा है  
वह हमारे वास्ते  
जान देने को तैयार है।  
कोमुरम भीम...

जैसा कि भीम ने सोचा था कुछ समय के बाद भारी निजाम सेना ने गूडेमों पर हमला बोल दिया। युद्ध केन्द्र जोड़नघाट पर धावा बोलने के लिए निजाम सेना तीन माह तक घोर प्रयत्न करती रही। पहाड़ चढ़ने के रास्ते को रोककर निजाम सेना पर गोलियाँ, तीर, पत्थर बरसाते हुए गोंड सेना उसे चढ़ने नहीं दे रही थी। आखिर निजाम सेना ने एक गोंड को रिश्वत देकर उससे पहाड़ चढ़ने का एक चोर रास्ता का पता लगाया। एक दिन उस चोर रास्ते के सहारे निजाम सेना जोड़नघाट पहुँच गई। घमासान युद्ध हुआ। गोंड सेना कम संख्या में थी, अलावा उसके पास नए अस्त्र-शस्त्र नहीं थे। नए अस्त्र-शस्त्रों से लैस बड़ी संख्या में मुकाबला कर रही निजाम सेना के साथ गोंड सेना आखिरी दम तक लड़ती रही। निसाना लगाने के लिए निजाम सेना कोमुरम भीम को पहचान नहीं पा रही थी। इतने में उसी गोंड ने जिसने सेना को चोर रास्ता दिखाया था, कोमुरम भीम के पीछे से आकर सेना के कैप्टन को संकेत किया यही है कोमुरम भीम। फिर क्या था उस पर दनादन गोलियों की वर्षा हुई। भीम का शरीर गोलियों से छिद गया। वह एक सितम्बर 1940 का दिन था। निजाम के दिल पर नगाड़ा बजानेवाले गोंड आदिवासी वीर योद्धा कोमुरम भीम के प्राण पखेरू जंगलों में से आसमान में उड़ गए।

जहाँ कोमुरम भीम ने अपनी अन्तिम साँस ली थी, वहाँ उनकी स्मृति में एक स्तूप निर्मित है। वहाँ प्रत्येक वर्ष पहली सितम्बर को दूर-दूर से गोंड आदिवासी

आकर अपने योद्धा की स्मृति में पुष्पांजली अर्पित करते हैं और 'कोमुरम भीम अमर है', के नारे लगाते हैं।

## भाषा की राजनीति और सर सैयद अहमद खाँ की भूमिका

कृपाशंकर सिंह\*

हिन्दी-उर्दू के जन्म के कई सौ साल तक उनमें आपस में कोई टकराव नहीं था। हिन्दी हिन्दुओं के साथ और उर्दू मुसलमानों के साथ नथी नहीं थी, और न ही कौमी जबानों की तरह इन्हें लिया जाता था। लिपि अलग-अलग थी, पर लिपि की वजह से भाषा में कोई दरार पैदा नहीं हुई थी। ब्रिटिश सत्ता की कोशिशों से हिन्दू-मुस्लिम धर्मों में साम्प्रदायिकता के अनेक स्तर पैदा हुए, जिनमें वक्त के साथ एक ओर फैलाव आया और दूसरी ओर गहराई आई। हिन्दी-उर्दू विवाद भी उन्हीं स्तरों में से एक है।

ब्रिटिश हाउस आफ कामन्स की एक कमेटी की रिपोर्ट में, जो ईस्ट इण्डिया कम्पनी से सम्बन्धित थी, 16 अगस्त 1832 को कम्पनी के मामलों पर विचार प्रकट करते हुए (सामान्य परिशिष्ट-1) चार्ल्स ग्रंट ने कहा था "विजित राष्ट्र की जनता को अपने में जज्व कर लेने का सबसे सरल साधन यह है कि विजेता अपनी भाषा को उनमें लागू करने का उपक्रम करे।"

इसके बाद गवर्नर जनरल के एक्जिक्यूटिव काउन्सिल के विधि सदस्य की हैसियत से लार्ड मैकाले 10 जून 1834 को भारत आया। उसे लोक शिक्षा की कमेटी का अध्यक्ष भी बनाया गया था। मैकाले की विस्तृत संस्तुति 'मैकाले मिनिट-1835' के नाम से मशहूर हुई। मैकाले की यही संस्तुति, जिसे गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बैण्टिन ने अक्षरशः मान लिया था, ब्रिटिश सरकार की नई शिक्षा नीति थी, जिसका अंग्रेजी शिक्षा, अंग्रेजी-संस्कृति और यूरोपीय ज्ञान के हिन्दुस्तान में प्रचार-प्रसार का उद्देश्य था। केवल अंग्रेजी भाषा के प्रचार-प्रसार पर सरकारी खर्च के निर्णय से देशी भाषाएँ सरकार की उपेक्षा और प्रकारान्तर से पूरी व्यवस्था (जिसमें अधिकारीगण, उद्योग-धन्धे और दूसरे आर्थिक-सामाजिक संगठन शामिल थे) की उपेक्षा का पात्र बनी।

\* पता : सी-4/86/2 सफदरजंग विकास क्षेत्र (हौजखास), नई दिल्ली-110016, दूरभाष : 26854818, मो. 9868637567

अंग्रेजों ने हिन्दी-उर्दू की व्यापकता को खत्म करने के लिए दूसरा रास्ता यह अपनाया कि इनकी आपसी संगति, समरसता तथा एक-दूसरे की पूरक होने की भूमिका को खत्म करवाया। जिसके लिए आसान रास्ता यह था कि हिन्दी-उर्दू को धर्म के आधार पर अलग-अलग दिखलाया जाए और हिन्दू धर्म तथा इस्लाम से उन्हें जोड़ दिया जाए। तब तक हजारों हिन्दू-उर्दू को अपनी मातृभाषा के तौर पर अपनाये हुए थे, और बहुतों ने उसमें साहित्य रचना भी की थी। उसी तरह लाखों मुसलमान हिन्दी और उसकी बोलियों में से किसी बोली को अपनाये हुए थे, और बहुत से उसमें काव्य रचना कर रहे थे। अमीर खुसरो, मलिक मुहम्मद जायसी, कबीरदास, उसमान, अब्दुरहीम खानखाना, रसखान, आलम, नूर मुहम्मद जैसे बहुत से मुसलमान कवि हिन्दी साहित्य को शुरू से ही समृद्ध करते आ रहे थे। हिन्दुओं और मुसलमानों को एक सूत्र में बाँधने के लिए भाषा एक सशक्त माध्यम थी। ये भाषाएँ दोनों कौमों को विखरने नहीं देती थीं। इनकी वजह से दोनों समुदायों में आपसी भावनात्मक लगाव था। समान भाषा बोलने वालों में एक खास तरह का अपनत्व रहता है। इसका बहुत बड़ा उदाहरण हिन्दुस्तान के देहातों के निवासी हैं।

अंग्रेजी भाषानीति ने हिन्दी-उर्दू की सामाजिक भूमिका को खत्म किया और दोनों के लिए अस्तित्व का संकट पैदा किया, और यह आशंका पैदा की कि एक की बढ़ोतरी दूसरे को निगल लेगी। इस डर ने उन्हें एक-दूसरे के रू-ब-रू खड़ा कर दिया, और जो शक्ति एक-दूसरे से मिलकर उन्हें अंग्रेजी से लड़ने में खर्च करनी चाहिए थी वह शक्ति आपस की लड़ाई में खर्च होने लगी। इससे ब्रिटिश सत्ता को एक और बहुत बड़ा फायदा पहुँचा, वह यह था कि हिन्दी-उर्दू की नोक-झोंक हिन्दू-मुस्लिम तनाव की आग में घी का काज करने लगी। 1835 के बाद के हिन्दी-उर्दू के झगड़े हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों में तब्दील होते गए, और इन सभी झगड़ों में अंग्रेजों के छिपे हाथ दिखाई देते हैं।

1857 के स्वातन्त्र्य-संग्राम के बाद मुस्लिम नेतृत्व तीन हिस्सों में बँट गया था। पहला वर्ग उलेमा और मुस्लिम-धार्मिक नेताओं का था जिन्होंने कभी अंग्रेजी सत्ता से समझौता नहीं किया। यह वह वर्ग था जिसने कभी भी मुस्लिम सत्ता के अवसान को मन से स्वीकार नहीं किया। इसमें देवबन्द स्कूल के नेता थे। दूसरे वर्ग में वे नेता थे जो राष्ट्रीयतावादी थे, और तीसरा वर्ग उन नेताओं का था जो अलीगढ़ कालेज से जुड़े थे। सैयद अहमद इनके नेता थे, जो धीरे-धीरे अंग्रेजी सत्ता के माध्यम बनते जा रहे थे।

सैयद सुलेमान नादवी, जो शिबली नूमानी के जीवनीकार थे, ने सैयद अहमद के बारे में लिखा है कि “वे (सैयद अहमद) अलीगढ़ कालेज के अंग्रेज प्रोफेसरों के जादू से इतने सम्मोहित थे कि उनके अपने खयालात उस जादू में खो गए और अब वे (सैयद अहमद) जो कुछ देखते हैं, उसे मि. बेक और दूसरे अंग्रेज प्रोफेसरों की

आँखों से देखते हैं और जो कुछ सुनते हैं, उन्हीं के कानों से सुनते हैं।” थ्योडोर बेक अलीगढ़ कालेज के प्रिन्सिपल थे और ब्रिटिश सत्ता की नीति को बड़ी सफाई से मुस्लिम उच्च वर्ग में लोकप्रिय बनाने का काम कर रहे थे। सैयद अहमद आरम्भ में हिन्दू और मुसलमान को हिन्दुस्तान की दो आँखें कहते थे, अपने को हिन्दू कहलाने पर जोर देते थे, हिन्दू-मुस्लिम एकता के समर्थक होने का दावा करते थे, पर धीरे-धीरे बेक और उन जैसे अंग्रेजों के प्रभाव में आकर हिन्दुओं के कट्टर दुश्मन बन गए थे।

यह वह दौर था, जब हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों के आर्थिक समीकरण में बदलाव आया। आर्थिक समीकरण के बदल जाने से सामाजिक समीकरण में परिवर्तन का आना लाजिमी था। मुस्लिम नेताओं के अन्दर भी अंग्रेजी शिक्षा को लेकर दो बिल्कुल विपरीत विचारधाराएँ सक्रिय थीं। उलेमा अंग्रेजी शिक्षा का विरोध कर रहे थे। उनका विश्वास था कि अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार से भारतीय मुसलमानों में ईसाई धर्म की ओर झुकाव बढ़ेगा और अपने धर्म के प्रति उदासीनता उत्पन्न होगी। दूसरी ओर सैयद अहमद खाँ ने न केवल अंग्रेजी शिक्षा का पक्ष लिया, वरन् उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए अलीगढ़ मुस्लिम कालेज (1875) की स्थापना की जो आगे चल कर विश्वविद्यालय हुआ और ब्रिटिश सत्ता के समर्थन की मुस्लिम राजनीति का प्रमुख केन्द्र बना।

उस दौर में हिन्दी-उर्दू को लेकर आर्थिक समीकरण में जो परिवर्तन आ गया था, उसके कारण हिन्दुओं में हिन्दी की ओर मुसलमानों में उर्दू की पक्षधरता बड़ी तेजी से आ रही थी। 1867 में बनारस के हिन्दुओं ने उर्दू के स्थान पर नागरी को अपनाने की माँग की। 1867 में ही सैयद अहमद खाँ ने मुसलमानों की एक सभा में यह कहा कि अपनी भाषा (उर्दू) की रक्षा के लिए मुसलमानों को संगठित हो जाना चाहिए। ‘अंजुमन-ए-हिमायत-ए-उर्दू’ की स्थापना हुई। संयुक्त प्रान्त और बिहार में देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी को लागू करने की माँग ने जोर पकड़ा। बंगाल के ले. गवर्नर के आदेश के मुताबिक 1872 में पटना और भागलपुर खण्डों में उर्दू के स्थान पर देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी लागू की गई। 1875 में स्थापित आर्यसमाज द्वारा हिन्दी का प्रचार भी हो रहा था। 1875 में ही अलीगढ़ में सैयद अहमद खाँ ने ‘मुहम्मडन एंग्लो ओरियंटल कालेज’ स्थापित किया, जिसमें उर्दू के पठन-पाठन की विशेष व्यवस्था की गई। उन्हीं वर्षों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी को विकसित करने में जी जान से जुटे हुए थे। ‘निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल। बिनु निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल।’ इस सन्देश को वे हर दरवाजे तक पहुँचाना चाहते थे। बंगाल सरकार ने 1880 में बिहार की कचहरियों और राजस्व आदि दफ्तरों में फारसी लिपि के स्थान पर देवनागरी लिपि को भी लागू करने का आदेश निकाला। इन सब कार्रवाइयों से पढ़े-लिखे मुस्लिम समाज में जो फारसी लिपि का ही प्रयोग करते चले आ रहे थे और छोटी सरकारी नौकरियों में फारसी लिपि के चलते रहने की



वजह से जिन्हें ये नौकरियाँ मिल रही थीं, उनमें निराशा और असंतोष का भाव पैदा हुआ।

वैसे हिन्दी-उर्दू का पूरा द्वन्द्व पढ़े-लिखे और बैद्धिक हिन्दू-मुस्लिम का द्वन्द्व था। दूरदराज के बाशिन्दों से, चाहे वे मुसलमान रहे हों या हिन्दू, इस झगड़े से कोई वास्ता नहीं था। वहाँ ये दोनों कौमों एक ही मिली-जुली जवान बोल रही थीं, जो वहाँ की स्थानीय बोली थी।

हिन्दी-उर्दू के संघर्ष में यह मुद्दा ही नहीं था कि कौन क्या बोल रहा है। यह भी लड़ाई का खास मुद्दा नहीं था कि हिन्दू-उर्दू में कहाँ कितना फर्क है। हम सब यह जानते हैं कि फर्क भी खास नहीं था और न आज है। लड़ाई का असली मुद्दा लिपि थी, और अगर जवान असली मुद्दा नहीं थी तो लिपि क्यों बनी? वह इसलिए कि असली खींचतान सरकारी नौकरियों को लेकर थी। यानी कि असली कारण आर्थिक था, धार्मिक या जातीय कारण आवाम को अपने साथ रखने के लिए जोड़े गए। निचली कचहरियों और निचले स्तर के सरकारी कामकाज में कौन-सी लिपि अपनाई जाए, इसी सवाल से हिन्दी-उर्दू का संघर्ष शुरू होता है। इसके पहले हिन्दी-उर्दू को लेकर हिन्दू-मुस्लिम झगड़े अस्तित्व में नहीं थे। पढ़े-लिखों को सरकारी नौकरियों का लालच देकर अंग्रेजों ने हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य में एक नया अध्याय जोड़ा था।

1887 में मद्रास में कांग्रेस का तीसरा अधिवेशन हुआ, जिसकी अध्यक्षता बदरुद्दीन तैयबजी कर रहे थे, जिस वक्त यह अधिवेशन चल रहा था, लगभग उसी समय (28 दिसम्बर 1887) सैयद अहमद खाँ लखनऊ में मुसलमानों की एक बड़ी संख्या को सम्बोधित करते हुए यह कह रहे थे कि कांग्रेस हिन्दुओं की संस्था है, और हिन्दू तथा मुसलमान कभी एक नहीं हो सकते। ये दोनों “दो भिन्न राष्ट्र (नेशन) हैं।” (दि पायनियर, 11 जनवरी 1888)।

उस दौर में मुस्लिम राजनीति में धार्मिक और शैक्षिक फ्रण्ट पर दो विपरीत दिशाओं की ओर चलने वाले आन्दोलन उठ खड़े हुए थे अलीगढ़ स्कूल और दारुल उलूम। एक ब्रिटिश सत्ता का दोस्त था, दूसरा ब्रिटिश सत्ता का कट्टर दुश्मन। सैयद अहमद कभी भी राष्ट्रीयतावादी नहीं हो पाए, उनकी मुख्य चिन्ता राष्ट्र को लेकर कभी नहीं थी।

मुस्लिम नेतृत्व की इस स्थिति से ब्रिटिश सत्ता को दो तरह के फायदे थे। पहला यह कि इस तरह अंग्रेज उलेमा के विरोध की काट मुस्लिम कौम के अन्दर से तैयार कर रहे थे और दूसरा यह कि देश में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच कई स्तरों पर झगड़ों की लगातार आनेवाली स्थितियाँ बनाए रखी जा सकती थीं।

‘अलीगढ़ इन्स्टिट्यूट गजट’ (1868, पृ. 755) में सैयद अहमद का शारदा प्रसाद संडेल को लिखे एक पत्र का हवाला है, जिसमें सैयद अहमद ने लिखा है कि “हमारी कचहरियों की जवान वही मिलीजुली जुबान होनी चाहिए जिसे आप हिन्दी

कहते हैं और मैं उर्दू। इस सवाल पर बहस बेकार है कि यह नागरी, रोमन या फारसी लिपि में लिखी जाए।”

लेकिन जल्दी ही सैयद अहमद ने अपना रुख बदल लिया। 1869 में मोहसिन-उल-मुल्क को लिखे एक खत में उन्होंने कबूल किया कि फारसी लिपि में लिखी उर्दू मुसलमानों की निशानी है (खतूत-ए-सर सैयद, पृ. 66)। जब कि उस वक्त तक ऐसी कोई बात नहीं हुई थी जिससे यह समझा जाता कि उर्दू केवल मुसलमानों की जवान है, या कि उर्दू के साथ मुसलमानों की पहचान जुड़ी हुई है। बहुत पहले की बात तो छोड़ ही दीजिए, साम्प्रदायिकता के बहुत प्रचार के बाद भी विभिन्न क्षेत्रों के मुसलमान वहाँ की क्षेत्रीय भाषाओं और बोलियों का ही प्रयोग करते रहे हैं। हम सभी इस बात से वाकीफ हैं कि पूर्वी पाकिस्तान का बंगलादेश बन जाने के इतिहास में सबसे बड़ा मुद्दा इसी जवान से ताल्लुक रखता है।

यही नहीं नागरी फारसी लिपि विवाद जब उठा तो हिन्दुओं की एक बड़ी संख्या उर्दू के पक्ष में वकालत कर रही थी और हिन्दी की विरोधी थी। इससे निष्कर्ष यह निकला कि भाषा को धार्मिक पक्षपात के नजरिये से देखा जाना अभी शुरू नहीं हुआ था। पर जल्दी ही सैयद अहमद हिन्दी को ‘सदियों पुरानी एक मरी हुई भाषा’ और उर्दू को ‘समूचे हिन्दुस्तान’ की भाषा बताने लगते हैं। 30 अप्रैल 1869 के अलीगढ़ गजट (पृ. 283) में उन्होंने कहा कि समूचे हिन्दुस्तान में उर्दू बोली जाती है। गजट के 25 जून 1869 के अंक (पृ. 142) में उन्होंने उर्दू भाषा के विस्तार को अदन तक बताया।

सैयद अहमद का उर्दू के पक्ष में पहला तर्क यही था कि उर्दू बहुत बड़े इलाके में बोली जाती है। हण्टर कमीशन (1882 ई.) के समक्ष गवाही में भी उन्होंने ऐसा ही कहा। लेकिन यह तर्क देते हुए सैयद अहमद इस तथ्य को भुला बैठे कि उर्दू और हिन्दी दोनों जवान के स्तर पर तो एक ही हैं। अन्तर तो लिपि का है। और अगर यह मानें कि उनके दिमाग में वह उर्दू थी, जिसे अरबी फारसी के भारी भरकम शब्दों को डालकर बताया गया है तो यह दावा खत्म हो जाता है कि उर्दू एक बहुत बड़े इलाके की बोलचाल की भाषा है, क्योंकि सामान्य जन भारी भरकम अरबी/फारसी शब्दों से वाकिफ ही नहीं थे। और जहाँ तक लिपि का सवाल है, देवनागरी लिपि अरबी फारसी लिपि की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय और जन सामान्य के निकट थी। बोलचाल की हिन्दी-उर्दू तो जुदा थी ही नहीं। दरअसल यह सारी खींचतान नागरी और फारसी लिपि की खींचतान थी जो जुबान के नाम पर चल पड़ी थी, जिसके पीछे निचली अदालतों, माल आदि से जुड़ी सरकारी नौकरियाँ थीं।

उर्दू के पक्ष में सैयद अहमद का दूसरा तर्क यह था कि कचहरियों में उर्दू की वजह से कामकाज में सुभीता रहेगा। वकीलों को भी फारसी लिपि की वजह से आसानी रहेगी। यह तर्क इस आधार पर तो ठीक था कि कचहरियों का काम फारसी

लिपि में होता आ रहा था, इसलिए वकीलों, मुंशियों, मुहरीरों को फारसी लिपि में काम की आसानी थी। पर आम जनता में फारसी लिपि का उतना प्रचलन नहीं था जितना नागरी का। इसलिए सरकारी कागजों और कचहरी के कागजों के फारसी लिपि में लिखे होने पर आम जनता को परेशानी ही होती थी।

दूसरी बात यह है कि चूँकि देवनागरी लिपि दूसरी सभी लिपियों की अपेक्षा उच्चारण के अधिक करीब और अधिक वैज्ञानिक है, इसलिए सरकारी कागजों में धोखाधड़ी के इरादे से फेरबदल करने की गुंजायश भी उसमें फारसी लिपि की अपेक्षा बहुत कम थी।

इस सम्बन्ध में 1875 में गृह विभाग को भेजे गए एस.सी. बेली के सुझाव उल्लेखनीय हैं। एस.सी. बेली ने सरकार को सुझाव दिया कि देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी को कचहरियों और दफ्तरों में कामकाज के माध्यम के रूप में अपनाया जाना चाहिए। कारण उन्होंने यह बताया कि फारसी लिपि में बड़ी आसानी से और बखूबी परिवर्तन किए जा सकते हैं, और इस तरह सरकारी कागज पत्रों (डाक्यूमेण्ट्स) में धोखाधड़ी की काफी गुंजायश रहती है। देवनागरी लिपि के अपनाने से उसे काफी कम लिया जा सकता है, क्योंकि देवनागरी लिपि में इस तरह के परिवर्तन आसानी से नहीं हो सकते (होम डिपार्टमेण्ट, एजुकेशन प्रोसीडिंग्स, नवम्बर 1875, नं. 11-13)।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सर सैयद अहमद खाँ वह पहले नेता थे जिसने उर्दू को इस्लाम के साथ जोड़ा और मुस्लिम कौम की पहचान के रूप में प्रचारित किया। यह एक रोचक तथ्य है कि पाकिस्तान को चरितार्थ करने वाले जिन्ना जिन मुद्दों को बारबार आगे करते रहे थे, वे मुद्दे सर सैयद के उठाए हुए थे। मसलन कि कांग्रेस हिन्दुओं का संगठन है, इसे सर सैयद ने कांग्रेस की स्थापना के तुरन्त बाद ही प्रचारित करना शुरू कर दिया था। मुस्लिम कौम एक नेशन है, इसे भी सर सैयद ने कहा था, जिसे जिन्ना ने मूल मन्त्र के तौर पर अपनाया।

सर सैयद का तीसरा नारा था उर्दू मुस्लिम कौम की जबान है और वह इस्लाम की पहचान है। इस मन्त्र को भी जिन्ना ने ज्यों का त्यों अपनाया था। सर सैयद का चौथा मन्त्र था कि ब्रिटिश सत्ता में अन्धभक्ति रखनी और उसे प्रदर्शित करना चाहिए। परिणाम यह हुआ कि सर सैयद से लेकर जिन्ना तक को अंग्रेजों ने अपने उद्देश्य-पूर्ति के लिए इस्तेमाल किया।

सर सैयद अहमद खाँ और जिन्नाह के बीच समय के इतने लम्बे अन्तराल के बावजूद दोनों की मूल सोच में इतनी अधिक समानता से इस अनुमान को बल मिलता है कि सर सैयद और उनके बाद के मुस्लिम नेतृत्व की एक धारा ऐसी थी जो उन्हीं की बनाई लीक पर चल रही थी। पाकिस्तान की सोच उसी का परिणाम था। दरअसल पाकिस्तान की नींव इकबाल या जिन्ना ने नहीं, वरन् सर सैयद अहमद खाँ ने रखी थी।

## मुण्डा जनजाति और उनकी भाषा

### अभिषेक अवतंस\*

प्रागैतिहासिक काल में भूमध्यसागर के किनारे से अनेक प्रोटो आस्ट्रेलाइड जनजातियाँ भारत के कई भागों में आकर बसीं। इनमें खासी, मोनखेर, निकोबारी और मुण्डा समुदाय के लोग प्रमुख कहे जा सकते हैं। इन आस्ट्रेलाइड जनजातियों को ही आग्नेय भी कहा जाता है। आग्नेय जनजातियों का एक विशाल समूह झारखण्ड में आकर स्थापित है। यही समूह आज मुण्डा जनजाति के नाम से पहचाना गया है।

सभी आग्नेय/आस्ट्रेलाइड जनजातियों ने अपना नाम मनुष्यवाचक रखा है। झारखण्ड के मुण्डा और संताल अपने लिए 'होड़ो को' शब्द का इस्तेमाल करते रहे हैं, जिसका अर्थ 'मनुष्य' है। मुण्डा समुदाय में प्रचलित 'होड़ो को'/मनुष्य के उद्भव के बारे में प्रचलित एक लोककथा का उल्लेख जगदीश त्रिगुणायत ने किया है—'पहले केवल पानी ही पानी था। भगवान पत्ते पर निष्प्रयोजन घूमा करते थे। सबसे पहले उन्होंने जोंक की सहायता से पानी के भीतर से मिट्टी निकाली। धरती बनी; उस पर घासफूस, पेड़-पौधे और पशु-पक्षी पैदा हुए। उन्हीं पक्षियों से 'हुर' नामक एक पक्षी ने एक अंडा दिया। अंडे में से दो मानव सन्तान एक लड़का और एक लड़की निकली। पीछे उन्हीं से मानव जाति का विकास हुआ। हुर के अंडे से निकलने के कारण मनुष्य होड़ो को या होरो को कहलाए।'<sup>1</sup> लटुकुम हड़म और लटुकुम बुढ़िया को मुण्डाओं के इतिहास में पहले नर-नारी के रूप में पहचाना गया है।

मुण्डा जाति के लिए विभिन्न अनुसंधाताओं ने कई नाम प्रस्तावित किए हैं। डॉ. जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन के अनुसार "संस्कृत में मुण्डा परिवार के लोगों का सामान्य नाम 'निषाद' ही प्रतीत होता है।<sup>2</sup> इसी कारण डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी जैसे कई विद्वानों ने 'निषाद' शब्द को मान्यता दी। बाद में 'कोल' शब्द भी इस जनजाति के लिए प्रचलित हुआ। डॉ. डोमन साहू समीर के अनुसार "वर्षों तक संताल, मुण्डा, विरहोर, कुड़म्बी आदि लोग 'खरवार' के नाम से जाने जाते थे।<sup>3</sup> लेकिन ये सभी

\* शोधछात्र, भाषाविज्ञान विभाग, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110067।  
पता : 6 शिवम, हरिहर सिंह रोड मोराबादी, राँची-834008 (झारखण्ड)

नाम इस आग्नेय जनजाति के लिए प्रचलित नहीं हुए। 'मुण्डा' शब्द बहुत पुराना था और इसमें विशिष्ट जातीय पहचान भी थी। 'मुण्डा' शब्द के तीन अर्थ बताए गए हैं :

1. जमीन का स्वामी या इलाकेदार
2. गाँव का मुखिया या प्रधान
3. मुण्डा खूँट के सदस्य या प्रमुख

इस तरह 'मुण्डा' शब्द का प्रचलन गाँव के प्रमुख या मुखिया या ग्राम-प्रधान के अर्थ में रूढ़ होता गया। सम्भवतः पहले गाँव या समाज के, प्रमुख को 'मुण्डा' कहा गया और बाद में यह एक जातिवाचक शब्द बन गया।

आज मुण्डा जनजाति झारखण्ड में बसी 32 से अधिक जनजातियों के बीच अपनी अलग पहचान रखती है। यह एक पितृसत्तात्मक समाज है और मुण्डारी भाषा का व्यवहार करता है। मुण्डा जनजाति अपने सामाजिक और सांस्कृतिक आचरणों के कारण झारखण्ड की संस्कृति की संवाहक बन गई है।

वस्तुतः झारखण्ड के पठारी क्षेत्र में विभिन्न जनजातियों का निवास है। आग्नेय श्रेणी की कई जनजातियाँ यहाँ बसी हैं। असुर, कोरवा, संताल, मुण्डा, हो इन्हीं आग्नेय जनजातियों में से हैं। इनके बीच मुण्डा जनजाति की विशिष्ट पहचान है। राँची जिले के पूर्वी और दक्षिणी क्षेत्रों में मुण्डा जनजाति के लोग सबसे अधिक संख्या में रहते हैं। इस दृष्टि से राँची जिला का बुंडू, तमाड़, अड़की, सिल्ली, मुरहू, तोरपा, खूँटी आदि कई इलाके मुण्डा लोगों के केन्द्र कहे जा सकते हैं। सरायकेला-खरसाँवा, गुमला, सिमडेगा, पश्चिम सिंहभूम और बोकारो जिलों में भी प्रचुर संख्या में मुण्डा जनजाति के लोग रहते हैं। इनके अतिरिक्त नौकरी और मजदूरी के लिए मुण्डा लोग देश-विदेश के विभिन्न क्षेत्रों में फैले हुए हैं।

झारखण्ड की जनगणना के सूत्रों के अनुसार मुण्डा जाति की आबादी विभिन्न कालखण्डों में इस प्रकार रही है

1961	6,28,931
1971	7,23,166
1981	8,45,887
1991	8,88,656

वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार झारखण्ड की जनजातीय आबादी में वृद्धि हुई है, लेकिन सभी जातियों की जनसंख्या में हुई वृद्धि का प्रामाणिक विवरण अभी उपलब्ध नहीं हुआ है। अनुमान लगाया जा सकता है कि मुण्डा जाति की जनसंख्या भी 1991 के बाद निश्चय ही बढ़ी है। अपने व्यापक क्षेत्र में फैली हुई मुण्डा जाति झारखण्ड की सभी जनजातियों में जनसंख्या की दृष्टि से तीसरे स्थान पर है। मुण्डा जाति अपने इतिहास, सामाजिक संरचना, धार्मिक विश्वास, सांस्कृतिक परम्परा और

भाषा की दृष्टि से विशिष्ट है।

झारखण्ड के इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण घटना के रूप में जनजातियों के आगमन को इतिहासकारों ने रेखांकित किया है। आर्य संस्कृति के पूर्व जनजातियाँ झारखण्ड में आईं, इस बारे में इतिहासकारों के बीच मतभेद है। लेकिन विभिन्न यात्रा विवरणों, पुराणों और ऐतिहासिक ग्रन्थों से यह संकेत मिलता है कि अनुमानतः 4000 ई. पू. में कई जनजातियों का प्रवेश झारखण्ड के खनिज-वनसम्पन्न क्षेत्र में हो गया था। झारखण्ड में जनजातीय समूहों का आगमन एक साथ न होकर अलग-अलग कबीलों में और अलग-अलग समय में हुआ। असुर, कोरवा, बिरहोर, बिरजिया सबसे पहले यहाँ आए। इनके बाद लगभग 1000 ई. पू. में मुण्डा झारखण्ड में आए। डॉ. एस.सी. राय के अनुसार "छोटानागपुर क्षेत्र में मुण्डाओं का प्रवेश 600 ई. पू. में हुआ।"<sup>4</sup> इसके पूर्व पारसनाथ पहाड़ी पर जैन धर्म के तीर्थंकर पार्श्वनाथ का निर्वाण हो चुका था। बाद में भारतीय इतिहास के मौर्य-काल में उराँव लोग झारखण्ड में आए। झारखण्ड में मुण्डा और उराँव लोगों को खेती के योग्य जमीन, लकड़ी के लिए जंगल और पशुधन के लिए चरागाह मिला। उनकी देखादेखी अन्य जनजातियाँ झारखण्ड में आईं।

मुण्डाओं के आगमन के पूर्व यह धरती इतने घने जंगलों से आच्छादित थी कि सूर्य की किरणों का प्रवेश भी दुष्कर था। हिंसक जानवरों से भरा पड़ा घने जंगलों वाला यह क्षेत्र अत्यन्त ही दुर्गम था। इन्हीं कठिन परिस्थितियों में व्यापक खूनी-संघर्ष के पश्चात् अन्त में रिसा मुण्डा के नेतृत्व में 21,000 मुण्डाओं ने झारखण्ड में प्रवेश किया। अनुसन्धाताओं ने बताया है कि मुण्डा जाति, झारखण्ड में प्रवेश से पूर्व, सिन्धु घाटी और उससे पूर्व भूमध्यसागर क्षेत्र में थी। साधारणतः मुण्डा शान्तिप्रिय और स्वतन्त्र जाति है। इसी कारण जब-जब और जहाँ-जहाँ इनपर आक्रमण हुआ तथा इनकी शान्ति भंग हुई, तब-तब वे लोग अपनी जगह बदलते गए। इतिहासकारों के अनुसार रिसा मुण्डा के साथ आए प्रारम्भिक 21 हजार मुण्डाओं के आधार पर भी झारखण्ड के अपने इलाके को 21 परगनों में विभाजित कर सुतिया मुण्डा ने मुण्डा राज का प्रवर्तन किया। मदरा मुण्डा को झारखण्ड में मुण्डा जाति का सबसे व्यवस्थित प्रशासक कहा गया है, जो वास्तव में अंतिम मुण्डा महाराजा था। ईसा की पहली शताब्दी में मुण्डा शासन के अन्त के बाद भी मुण्डा समुदाय ने अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान को कालप्रवाह में लगातार सुरक्षित रखा है। मुण्डा लोक-संस्कृति सामाजिक व्यवहारों, पर्व-त्योहारों और नृत्य-गीतों में उपस्थित मिलती है। मुण्डा संस्कृति के जिस विशिष्ट रूप की विवेचना इतिहासकारों और अनुसंधाताओं ने की है, उसकी जीवन्त तस्वीरें झारखण्ड में मिलती हैं। सामाजिक और पारिवारिक संगठन, धर्म और विश्वास, पर्व और त्योहार के स्तर पर सांस्कृतिक जीवन की बहुरंगी विशेषताएँ ही झारखण्ड की अपनी पहचान हैं। वास्तव में झारखण्ड की संस्कृति

अनेक जातियों, अनेक जनजातियों, अनेक लोक व्यवहारों और अनेक विश्वासों के समन्वय से बनी है। झारखण्ड में इतिहास के विभिन्न कालखण्डों में सांस्कृतिक परिवर्तन इतनी तीव्रता से हुआ है कि कभी-कभी संस्कृति के विघटन की चिन्ता भी इतिहासकारों तथा समाज-शास्त्रियों के बीच छा जाती है। इसे आधुनिकीकरण, पाश्चात्यीकरण, शहरीकरण, औद्योगिकीकरण अपसंस्कृतिकरण जैसे कारणों के बीच झारखण्डी संस्कृति के लिए घातक बताया गया है। निश्चय ही झारखण्ड में मुण्डा एवं अन्य सभी जनजातीय समुदायों में प्रचलित विभिन्न लोक-भाषाओं ने स्थानीय लोकजीवन और लोकसंस्कृति को पूरी तरह प्रस्तुत किया है। मुण्डारी भाषा भी अपवाद नहीं है।

मुण्डारी आस्ट्रिक या आग्नेय परिवार की भाषा है। इस परिवार की भाषाएँ झारखण्ड और भारत के अन्य राज्यों में ही नहीं, कई अन्य देशों में भी प्रचलित हैं। वियतनाम, मलेशिया, म्यन्मार, हिन्दचीन, इंडोनेशिया जैसे कई देशों में आस्ट्रिक भाषाओं का प्रचलन है। मुण्डा जाति झारखण्ड में कम से कम 600 ई. पू. में आई और तब से मुण्डारी भाषा का व्यवहार इस क्षेत्र में हो रहा है। मोराजी देवगम ने लिखा है—“मुण्डारी दुनिया की प्रसिद्ध पाँच संश्लेषात्मक भाषाओं में एक है। अन्य भाषाएँ हैं—जापानी, भीर्लंडा, एगरोपिनो और बसाका। इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं कि झारखण्डवासियों के पास ही मुण्डारी के रूप में सृष्टि की मूल भाषा और संस्कृति मूल रूप में सुरक्षित रह गई है और यह मानवीय योजनाओं से ओतप्रोत ईश्वर का श्रेष्ठतम उपहार है।”<sup>5</sup> यह भाषा झारखण्ड में मुण्डा जाति के पास सुरक्षित है। प्रधानतया मुण्डारी राँची जिले के पूर्वी भाग में खूँटी से तोरपा के बीच बोली जाती है। एक अत्यन्त प्राचीन और महत्वपूर्ण भाषा समुदाय का अंग होने के कारण मुण्डारी पर अनेक भाषा समूहों का सीधा प्रभाव लक्षित होता है। चीनी और मंगोल, संस्कृत और मोनखेर भाषाओं के सम्पर्क में आने के कारण मुण्डारी ने अपने सुदीर्घ इतिहास में पर्याप्त संक्रमण और परिवर्तन का सामना किया है। प्रारम्भ में भाषा वैज्ञानिक आर्यभाषा परिवार के अतिरिक्त अन्य भाषा परिवारों को कोल भाषाओं के अन्तर्गत गिनते थे, लेकिन मेक्समूलर और अन्य परवर्ती भाषा चिन्तकों ने कोल के स्थान पर मुण्डा शब्द का प्रस्ताव सामने रखा। इसके बाद ही मुण्डा जनजाति की भाषा मुण्डारी कही गई। झारखण्ड के अतिरिक्त मुण्डारी बोलियाँ छत्तीसगढ़, उड़ीसा, बंगाल आदि क्षेत्रों में प्रचलित हैं। लेकिन झारखण्ड में मुण्डारी का सबसे मानक रूप नजर आता है।

राँची जिले में प्रचलित मुण्डारी भाषा के चार भेद मिलते हैं—हसादः, तमड़िया, नागुरी और केरः। जहाँ कुडुख भाषी उराँव लोग मुण्डारी बोलने का प्रयास करते हैं, वह केरः है। हो भाषी मुण्डा सिंहभूम में रहते हुए भी मुण्डारी बोलते हैं, उन्हें उराँव मुण्डा कहते हैं। वास्तव में सबसे शुद्ध और मानक मुण्डारी खूँटी और मुरहू के बीच

में बोली जाती है जिसे हसादः कहते हैं। मुण्डारी के इन सारे प्रभेदों में ध्वनि और शब्दावली का अन्तर मिलता है, लेकिन इनके बीच भाषा की मूल प्रकृति की विलक्षण एकता भी है। झारखण्ड में प्रचलित मुण्डारी अपने आप में एक पूर्ण भाषा है जिसमें बिना किसी अन्य भाषा का सहारा लिए लोग अपनी भावनाएँ व्यक्त करते हैं।

मुण्डारी अश्लिष्ट योगात्मक भाषा है जिसमें शब्दों का एक-दूसरे के साथ योग इतना जटिल होता है कि वाक्य और शब्दों में भेद सूचित करना कठिन हो जाता है। जैसे

<b>मुण्डारी</b>	<b>हिन्दी</b>
दलेनतनाए	वह अपने को मारता है
वाकोआलातना	फूल खिल रहे हैं
ओड़ोःकोहिजृःतना	वे फिर आ रहे हैं

मुण्डारी की ध्वनियाँ आर्यभाषा परिवार की ध्वनियों जैसी नहीं हैं। ‘अ, आ, इ, ई, ए’ जैसे स्वर संस्कृत से मुण्डारी में आए हैं, लेकिन मुण्डारी में क्ष, त्र, ज्ञ, ऋ, य, व, श, ष ध्वनियाँ नहीं हैं। इनमें आनुनासिक व्यंजनों के अतिरिक्त बहुत कम संयुक्त ध्वनियाँ हैं! मुण्डारी में ऐ तथा औ स्वर तो हैं, लेकिन इनका उच्चारण एए तथा अओ जैसा हो जाता है। मुण्डारी ध्वनियों की सबसे मौलिक विशेषता अवरुद्ध स्वरों का प्रयोग है। दो स्वरों के बीच अचानक रुककर पुनः स्वरों का उच्चारण करना मुण्डारी भाषा की मौलिकता है। इस विशेष प्रक्रिया के कारण प्रत्येक रुद्ध स्वर दो स्वरों जैसा सुनाई देता है, जिनमें पहला स्वर तो स्पष्ट और ह्रस्व होता है लेकिन दूसरा स्वर पहले की संक्षिप्त प्रतिध्वनि जैसा लगता है। नागरी लिपि में मुण्डारी को लिखते समय रुद्ध स्वरों का संकेत अधिकतर विसर्ग लगाकर किया जाता है। जैसेअः, एः, औः।

प्राचीन भाषा होने के कारण मुण्डारी की कोई अत्यन्त प्राचीन लिपि भी रही होगी, लेकिन उसके लोप के कारण मुण्डारी को आज नागरी लिपि में ही लिखा जाता है।

मुण्डारी द्वयक्षर भाषा है जिसमें उपसर्ग और प्रत्यय के योग से अधिकतर दो पदों का उपयोग किया जाता है। मुण्डारी का लिंग विधान बहुत सरल है जिसमें मनुष्यवाची शब्दों को छोड़कर अधिकतर प्राणिवाचक शब्दों में लिंग परिवर्तन के लिए एंगा और संडी का उपयोग किया जाता है। मनुष्यवाची संज्ञा शब्दों में कोड़ा, और कुड़ी का प्रचलन है। लिंग सूचना के लिए किया जाता है। जैसे

<b>हिन्दी</b>	<b>मुण्डारी</b>
मुर्गी	एंगा सिम
मुर्गा	संडी सिम
बाघिन	एंगा कुला
बाघ	संडी कुला

स्त्री कुड़ी होड़ो  
पुरुष कोड़ा होड़ो

मुण्डारी में कई बार अप्राणिवाचक संज्ञा शब्दों के लिंग का पता नहीं चलता। वास्तव में मुण्डारी के शब्दों के साथ एंगा या संडी जैसे लिंग सूचक पदों का उपयोग भी तभी किया जाता है जब लिंग भेद का निर्देश बहुत आवश्यक होता है। पारिवारिक सम्बन्धों के संज्ञा पदों में लिंग भेद स्पष्टतया लक्षित होता है। जैसे :

<b>हिन्दी</b>	<b>मुण्डारी</b>
पिता	अपु
माता	एंगा
पति	हेरेल
पत्नी	हेरा

संज्ञा या सर्वनामों का वाक्य में प्रयोग करने पर लिंग विधान का कोई प्रभाव मुण्डारी क्रिया संरचना पर नहीं होता। जैसे

<b>हिन्दी</b>	<b>मुण्डारी</b>
पुरुष जा रहा है	कोड़ासेनो:तना
स्त्री जा रही है	कुड़िसेनो:तना
गाय भाग रही है	गुन्डिनिरतना
बैल चर रहा है	हड़ाअतिडतना

मुण्डारी में संस्कृत की ही तरह एकवचन, द्विवचन और बहुवचन का प्रयोग होता है तथा आठ कारक मिलते हैं। संज्ञा शब्दों के कारकों की विभक्तियाँ तीन वचनों में इस प्रकार हैं

<b>कारक</b>	<b>एकवचन</b>	<b>द्विवचन</b>	<b>बहुवचन</b>
कर्ता	मूल संज्ञा पद	किड	को
कर्म	मूल संज्ञा पद	किड	को
करण	ते	किडते	कोते
सम्प्रदान	नतेन/नतिन	किडनतेन/किडनतिन	कोनतेन/कोनतिन
अपादान	आते	किंआते/किडाते	कोआते
सम्बन्ध	अः	किडअः	कोअः
अधिकरण	रे	किडरे	कोरे
सम्बोधन	ए	ए-किड	ए-को

मुण्डारी की एक भाषिक विशेषता यह भी है कि जो सर्वनाम कर्ता कारक के रूप में आते हैं, उन्हें क्रिया और कर्म आइद के अन्त में जोड़ दिया जाता है। जैसे

<b>हिन्दी</b>	<b>मुण्डारी</b>
---------------	-----------------

मैं खाता हूँ अइ जोम तना  
वह बाँसुरी बजाता है अए रूतु ओरोडतना

मुण्डारी के धातु और संज्ञा शब्दों में प्रत्यय, अन्तर्लय और विसर्ग का विधान है। उपसर्गों का प्रयोग मुण्डारी में बहुत कम होता है। मुण्डारी में भूत, वर्तमान और भविष्य तीन काल होते हैं और हिन्दी की तरह इन कालों के प्रभेद भी हैं। जैसे

भूतकाल	सेन केनइज	मैं गया था
वर्तमानकाल	सेनो:तनइज	मैं जाता हूँ
भविष्यकाल	सेनो गइज	मैं जाऊँगा

मुण्डारी में सामाजिक और पारिवारिक सम्बोधनों में स्तर के अनुसार शब्दों का व्यवहार किया जाता है। बड़ों के लिए आने वाले सम्बोधनों में लिंग भेद नहीं होता, जबकि औरों के सम्बोधन शब्द लिंग भेद से परिचालित होते हैं। स्त्री और पुरुष दोनों सम्मानितों के लिए 'गा' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। जैसेजोअरगा, दुबमेगा। बराबर वाले पुरुषों के लिए 'हले' और 'हो' का प्रयोग होता है जबकि स्त्रियों के लिए 'ना', 'गो' और 'बाई' का प्रचलन है। जैसेजोअरहो, दुबमेहो, जोअरना, जोअरगो, जोअरबाई। अपने से छोटों को सम्बन्धित करने के लिए बाबू, भाई, ना, बिटी का प्रयोग मुण्डारी में होता है। मुण्डारी के इस व्याकरण विधान में एक साथ अनेक विशेषताएँ विद्यमान हैं। वास्तव में मुण्डारी के वर्ण, शब्द और वाक्य एक-दूसरे से ऐसे मिश्रित हो गए हैं कि उन्हें वर्गीकृत करना कठिन है। ठेठ मुण्डारी में पुरुषवाचक सर्वनाम के श्रोता को, वक्ता को तथा औरों को शामिल या भिन्न करके बोलने में अलग-अलग द्विवचन और बहुवचन रूप नजर आते हैं :

### द्विवचन

श्रोता को छोड़कर	अलिड जोम तना	हम दोनों खाते हैं।
श्रोता के साथ	अलड जोम तना	हम दोनों खाते हैं।
वक्ता-श्रोता को छोड़कर	अकिड जोम तना	वे दोनों खाते हैं।

### बहुवचन

श्रोता को छोड़कर	अले जोम तना	हम लोग खाते हैं।
श्रोता के साथ	अबु जोम तना	हम लोग खाते हैं।
वक्ता-श्रोता को छोड़कर	अको जोम तना	वे लोग खाते हैं।

व्याकरणिक संरचना की दृष्टि से मुण्डारी को क्लिष्ट भाषाओं में गिना जाता है, जिस पर संस्कृत से लेकर आज तक की तमाम भारतीय भाषाओं के प्रभाव नजर आते हैं। यही कारण है कि मुण्डारी में विभिन्न भाषाओं के शब्द एक साथ मिलते हैं।

लेकिन मुण्डारी भाषियों ने सरल-स्वाभाविक जीवन को अभिव्यक्त करने के लिए विभिन्न परिवारों से ग्रहण किए शब्दों को अपनी मौलिक शब्दावली में बदल डाला है। मुण्डारी के ऐसे कुछ परिवर्तित शब्द हैं :

<b>संस्कृत</b>	<b>मुण्डारी</b>
अंधमानव	अंद मनोआ
कथा	कंता
देशम्	दिसुम्
दुःखम्-सुखम्	दुखम्-सुखम्
शिशिर	सिसिर
अवसर	अओसर

लेकिन मुण्डारी की अपनी पारम्परिक शब्दावली अधिक महत्त्वपूर्ण है जिसमें बाघ को कुला, सूर्य को सिडिग, बाँसुरी को ओरोड, विवाह को अइन्दी, सगाई को बाला, मनुष्य को होड़ो, पानी को दाः, आँख को भेद, दूध को तोआ, संतान को होन, तीर को कअम पुकारा जाता है। मुण्डारी में यह शब्दावली शताब्दियों से चली आ रही है। मुण्डारी शब्दावली का अध्ययन करने वाले भाषा-वैज्ञानिकों ने अनुसंधान किया है कि संस्कृत में अराल, आकुल, कुण्ठ, आरोप, आपीड, कुब्ज, कनक, कबरी, कज्जल, खड्ग, गण, घट, जाल, डिम्ब, दाडिम जैसे कई शब्द मुण्डारी से आए हैं। 'म्ब' और 'बु' ध्वनियों से बने कदम्ब और निम्बु जैसे शब्द भी मुण्डारी से ही आए हैं। वास्तव में मुण्डारी का शब्दकोश मुण्डा समाज और संस्कृति की ही तरह प्राचीन और विशाल है।

मुण्डारी भाषा अपने सुदीर्घ इतिहास में लिपि की समस्या से जूझती रही है। जगदीश त्रिगुणायत ने प्राचीन काल में मुण्डारी भाषा के लिपिहीन होने का अनुमान लगाया है 'अपने सारे लम्बे इतिहास में, मुण्डा जाति कभी भी विकास की उस अवस्था में नहीं पहुँचने पाई है, जब, मानसिक अभिव्यक्तियाँ लिपियों में आबद्ध कर उतारी जाती हैं। अस्तु, उनका सारा लिपि-विहीन साहित्य अभी तक मौखिक परम्परा के यान पर चढ़कर लम्बे युगों की दूरी तय करता आया है।'<sup>6</sup>

वास्तव में मुण्डारी की कोई प्राचीन लिपि अवश्य रही होगी, जिसका अब पूरी तरह लोप हो चुका है। इस भाषा के लिए अब तक रोमन, बंगला, उड़िया और देवनागरी लिपियों का अलग-अलग कारणों तथा स्थानों पर प्रयोग होता रहा है। फादर हाफमैन ने 'इन्साइक्लोपीडिया मुण्डारिका' में रोमन लिपि का व्यवहार मुण्डारी के लिए किया है। लेकिन रोमन में सभी मुण्डारी ध्वनियों को व्यक्त नहीं किया जा सकता है। यही बात बंगला और उड़िया के सन्दर्भ में भी कही जा सकती है। देवनागरी लिपि के उपयोग की भी कुछ सीमाएँ हैं, लेकिन डॉ. रामदयाल मुण्डा आदि आधुनिक भाषा-विदों ने यही निर्देश दिया है कि कुछ परिवर्तनों के साथ देवनागरी को ही मुण्डारी भाषा की

मानक लिपि की मान्यता देनी चाहिए।

मुण्डारी जाति को गीत-संगीत प्रिय कहा जाता है। इसीलिए मुण्डारी भाषा में विशाल लोक साहित्य मिलता है। लोक गीत और लोक कथाओं की कोई कमी इस भाषा में नहीं है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में ईसाई मिशनरियों ने इस भाषा में मुद्रण की सुविधाओं का आरम्भ किया। ईसाई धर्मप्रचार की अनेक मुण्डारी पुस्तकें छपीं। बाद में फादर डी. स्मेत रचित 'मुण्डारी व्याकरण', फादर हाफमैन रचित 'मुण्डारी व्याकरण' और फादर नोट्रोड रचित मुण्डारी-जर्मन व्याकरण, मुण्डारी शब्दकोश आदि प्रकाशित हुए। बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में बुदूबाबू, भैया राम मुण्डा, दुलाय चन्द्र मुण्डा, रामदयाल मुण्डा, बलदेव मुण्डा, दिलबर हंस, कासीनाथ सिंह मुण्डा, सुलेमान बडिंग, बलदेव मुण्डा, मानसिंह मुण्डा, साधू मुण्डा जैसे अनेक रचनाकारों ने मुण्डारी में कविता और गद्य की विधाओं में कुछ न कुछ लिखा है। इस कारण अब मुण्डारी भाषा और साहित्य का भविष्य सुनहरा नजर आता है। भविष्य में मुण्डा जाति और मुण्डारी भाषा में विकास की अनेक सम्भावनाएँ हैं। मुण्डा जनजाति की यह भाषा अभी भी मानववैज्ञानिकों, भाषाविज्ञानियों और इतिहासकारों के लिए एक चुनौती है।

### सन्दर्भ

1. जगदीश त्रिगुणायत (सं.) : मुण्डा लोक कथाएँ, पृ. 45
2. जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन : भारत का भाषा सर्वेक्षण, भाग-4, पृ. 8
3. डॉ. डोमन साहु समीर : हिन्दी और संतालीतुलनात्मक अध्ययन, पृ. 36
4. डॉ. एस.सी. राय : दि मुण्डाज एण्ड देयर कण्ट्री, पृ. 36
5. युद्धरत आम आदमी, आदिवासी स्वर और नई शताब्दी विशेषांक, भाग-2, 2002, पृ. 288
6. जगदीश त्रिगुणायत (सं.) : मुण्डा लोककथाएँ, पृ. 60

## पाठकीय प्रतिक्रिया

इस अंक का संपादकीय मुझे सदा की तरह सम्यक दृष्टि से प्रेरित तथा यथातथ्य लगा। आपका यह आकलन सर्वथा सही है कि “बिहार के रोग का भ्रम भी समाचार माध्यमों द्वारा पोषित भ्रम ही है। रोग सारे देश का है अतः उसका निदान भी सार्वदेशिक होना चाहिए।” आपकी यह टिप्पणी भी यथातथ्य और युक्तियुक्त ही है कि “अंग्रेजी शिक्षा, मार्क्सवाद तथा बहावी प्रभाव, इन तीनों से जन्मा माइण्डसेट हमारे लिए सबसे बड़ी समस्या का कारक बनता जा रहा है।

- रमेशचन्द्र शाह, भोपाल।

‘चिन्तन-सृजन’ का नया अंक अक्टूबर-दिसम्बर 2005 का मिला। उक्त अंक में ‘डॉयलॉग के स्तर के लेख छपे हैं। वैचारिक और चिन्तन-सृजन नाम को प्रमाणित करने वाले लेख छपे हैं। लगभग पूरा अंक पढ़ गया हूँ। सम्पादकीय टिप्पणी अच्छी लगी। ‘बिहार का रोग या समस्त भारत का?’ कथन ठीक है। प्रश्न राजनीतिक नहीं, अपितु देश की अर्थव्यवस्था और नई प्रगति की ओर बढ़ने का भी है। उसका प्रभाव दिल्ली पर भी है। अन्तिम अनुच्छेद वामपंथियों के सम्बन्ध में है। उसे साधक मानना या बाधक मानना, इस ओर संकेत है। शंकर शरण ने ‘इतिहास लेखन को अंतर्राष्ट्रीय विवाद के रूप में प्रस्तुत किया। पाठ्यक्रम के प्रश्नों को उधाड़कर रखा है। इस सम्बन्ध में मेरे भी अनुभव हैं। स्वयं हिन्दी के पाठ्यक्रम को देखता रहा हूँ तो आश्चर्य होता रहा है। बहुत बदल गया है। मैं उस्मानिया विश्वविद्यालय का छात्र था। उस समय हमारे दोनों ही प्रोफेसर संस्कृत के विद्वान थे। एम. ए. के आठ प्रश्न-पत्रों में एक प्रश्न-पत्र संस्कृत का था। बी. ए. में एक प्रश्न-पत्र उर्दू का था। उर्दू तथा संस्कृत, अब हिन्दी विभागों में नहीं हैं। निबन्ध का स्वतंत्र प्रश्न-पत्र था। आज तो निबन्ध का प्रश्न-पत्र भी नहीं रहा। बीरगाथा काल, भक्तिकाल तथा रीतिकाल पर स्वतंत्र प्रश्न-पत्र थे। आज तो तीनों कालों को एक प्रश्न-पत्र में सपेट लिया गया है। गद्य का एक ही प्रश्न-पत्र था। आज तो गद्य के प्रश्न-पत्रों की संख्या बढ़ गई है।...पाठ्यक्रम तो समय के साथ बदलता है। बोर्ड की बैठकों में तो मालूम होता है। ग्यारहवीं कक्षा की बोर्ड में मैं सम्पादक था। तुलसीदास की कविताओं का चयन करना था। मेरी एक सदस्य से मुठभेड़ हो गई। मैंने तो ‘विनय-पत्रिका’ के सरल पदों का चयन कर लिया किन्तु वामपंथी मित्र को राम के नाम से चिढ़ थी। मित्र, ऐसी पंक्तियों का चयन करना चाहते

थे जिसमें ‘राम’ नहीं है। अन्ततः ‘जाऊँ कहाँ तजि चरण तुम्हारे’ पद पर सहमति हुई। उसका अर्थ तो राम से सम्बन्धित ही था। उन्हीं की शरण में जाना था। बस, नाम नहीं था। उन्हें कैसे समझाता कि तुलसी राममय हैं? गांधीजी तो तुलसी के शब्द-शब्द में ‘राम’ को अनुभव करते थे। ऐसे वामपंथी लोग जिद करते हैं। बहसमात्र करते हैं। इतिहास को उन्होंने बहुत बदला है और इस पर जिस विवाद को शंकर शरण ने प्रस्तुत किया है, वह मुझे ठीक लगा है। हमें ऐसे लोगों के लेख पढ़ना चाहिए। पाठ्य-क्रम का विवाद मात्र ‘इतिहास’ का नहीं अपितु प्रत्येक विषय का है। ज्ञान की प्रगति से जुड़ा हुआ है। उसे एक देश तक सीमित नहीं रखा जा सकता। प्रत्येक भाषा का इतिहास, साहित्य का इतिहास इसी तरह विवाद के विषय हैं। ऐसे विवादों पर खुलकर विचार आने चाहिए। डॉ. राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव का लेख ‘भारतीय उच्च शिक्षा का बदलता स्वरूप’ भी बहुत कुछ कह जाता है। किस विषय में हम कितना आगे बढ़ गये हैं? जानना आवश्यक है तदनुसार आगे बढ़ना आवश्यक है। इस अंक में दो सृजनात्मक निबन्ध भी हैं शंकर पुणताबेकर का ‘देखा जाएगा’ और डॉ. किशोरीलाल व्यास का ‘पर्यावरण संरक्षण’। दोनों ही निबन्ध सहज हैं और संकेतों में अपना आशय व्यक्त कर देते हैं।

- डॉ. राजमल बोरा, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

‘चिन्तन-सृजन’ ने अपनी अल्पावधि में अपने जन्म के तीसरे वर्ष में ही सुप्रतिष्ठ त्रैमासिकों में स्पृहणीय विद्वत्समादर आयत्त कर लिया है, जो हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता के लिए निश्चय ही सातिशय गौरव का विषय है। पत्रिका की इस सारस्वत उपलब्धि के मूल में आपके अखण्ड वाङ्मय तप एवं वैदुष्य-विदग्ध सूक्ष्मेक्षिका की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। मेरा अपना ख्याल है कि किसी भी ख्याताख्यात लेखक को इसमें छपकर अपने को अवश्य ही कृती होने का गौरव-बोध होता होगा। मैं जब ‘परिषद्-पत्रिका’ (त्रैमासिक) का सम्पादन करता था, तब मुझे इस पर बड़ा गुमान होता था, पर ‘चिन्तन-सृजन’ ने तो मेरी सारी हेकड़ी गुम कर दी है। इस सुखद सारस्वत अतिशायिता से मैं एक साथ आह्लादित और गर्वान्वित हूँ। मैं इसकी साहित्यिक सार्वभौमता के निरन्तर उत्कर्ष का आकांक्षी हूँ।

- डॉ. श्रीरंजन सुरिदेव, पटना।

‘चिन्तन-सृजन’ का अक्टूबर-दिसम्बर 2005 अंक प्राप्त हुआ। प्रस्तुत अंक सदैव की भाँति रोचक, ज्ञानवर्द्धक एवं तथ्यपरक आलेखों के समावेशित होने के फलस्वरूप संग्रहणीय अंक बन गया है। आपको कुशल संपादन हेतु बहुत-बहुत बधाई एवं साधुवाद।

- डॉ. दिनेश मणि, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

‘चिन्तन-सृजन’ अक्टूबर-दिसम्बर 2005 का अंक सर्वश्री रमेश चन्द्र शाह,

शंकर शरण, राम बहादुर राय, डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी, डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव और डॉ. नन्दलाल मेहता वागीश के गंभीर लेखों के कारण महत्त्वपूर्ण बन गया है। प्रो. रमेश चन्द्र शाह का लेख पहली बार अरविन्द दर्शन के आलोक में 'सावित्री' का विवेचन कर प्रभावित कर रहा है। श्री शंकर शरण ने इतिहास लेखन के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय विवाद को सबके समक्ष ला दिया है। डॉ. त्रिपाठी ने कबीर के दार्शनिक पक्ष के नये आयाम को स्पष्ट किया है। डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव ने आचार्य शुक्ल की रसमीमांसा को वल्लभ दर्शन के अनुसार सिद्ध कर नयी चिंतना को आमंत्रित किया है। और डॉ. वागीश ने भारतीय दृष्टि से साहित्य और सामाजिक सरोकार के संबंध पर प्रकाश डाला है। पर इन्होंने कबीर और तुलसी में अंतर क्यों किया है? दोनों एक ही भारतीय भूमि की देन हैं। श्री राम बहादुर राय ने पत्रकारिता के क्षेत्र में घुसपैठ करती व्यावसायिकता के परिणाम को दिखाने का साहस किया है। समग्रतः 'चिन्तन-सृजन' भारतीय चिंतन एवं नव सृजन का आधार बनता जा रहा है।

- डॉ. शत्रुघ्न प्रसाद, पटना (बिहार)

'चिन्तन-सृजन' एवं 'डॉयलाग' के मूल्यावान अंक मिलते रहे हैं। हर अंक में सुदृढ़ नेतृत्व एवं आस्थापूर्ण यात्रा का संकल्प प्रभावित करता है। व्यक्ति, यदि व्यक्तित्व हो, तो समूह पर भारी पड़ता है, यही सिद्ध होता है, बार-बार सिद्ध होता है, नूतन वर्ष और भी सुदृढ़ संकल्पमय हो, यही कामना है।

- प्रोफेसर मदनमोहन तरुण, खडकवासला, पुणे।

कोई भी लेखक या समाज सेवक इसका विरोध नहीं करता। और करे भी कैसे, स्वयं नारियाँ भी इस नंगेपन को अपना 'बोल्ड-कर्म' मानने लगी हैं। यह एक ऐसा विवाद है जिसका न तो समाधान है न अन्त ही। अन्य आलेख भी शोधपरक एवं सारगर्भित हैं 'को बड़ छोट कहत अपराधू।' ऐसी उत्कृष्ट पत्रिका के संपादन हेतु बहुत-बहुत साधुवाद!

- डॉ. हरeram पाठक 'साहित्यरत्न' अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,  
डिगबोई महिला महाविद्यालय, डिगबोई-786 171.

शोध पत्रिका चिन्तन-सृजन का अक्टूबर-दिसम्बर 2005 अंक पढ़कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। हिन्दी शोध पत्रिका जगत में इसका विशिष्ट स्थान है। 'भारतीय उच्च शिक्षा का बदलता स्वरूप', 'कबीर का दार्शनिक पक्ष' डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी, तथा आचार्य शुक्ल का साहित्य-दर्शन', डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव के शोधपरक लेख पर्याप्त ज्ञान-वर्धक एवं चिन्तनपरक हैं। उच्चस्तरीय सामग्री प्रकाशन हेतु बधाई स्वीकार करें।

- प्रो. (डॉ.) आशा कपूर, अध्यक्ष, हिन्दी प्रकोष्ठ, मानविकी एवम् सामाजिक विज्ञान विभाग, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, रुड़की, (उत्तरांचल)।

*We Strive  
to Satisfy  
Our Customers*

**VASUNDHARA MARKETING CO.**

Sales Tax No. LC/13/017261/1080  
☎ 3277883 (Off.)

*Regd. Office*  
1/3575, Netaji Subhah Marg  
Darya Ganj, New Delhi-110002



With Best Compliments

from

**VASUNDHARA IMPEX (P) LTD.**

*Administrative Office*

LG-69, World Trade Centre,  
Babar Lane, New Delhi-110001

*Regd. Office*

1/3575, Netaji Subhah Marg, Darya Ganj,  
New Delhi-110002 ❖ Phone Off. 3277883, 3711848